

**TEXT PROBLEM
WITHIN THE
BOOK ONLY**

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182224

UNIVERSAL
LIBRARY

OUP—23—4—4—69—5,000.

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. **H83/C49V** Accession No. **H3891**

Author **चहोकादयाय . बंकिमचन्द्र**

Title **विष - वृक्ष**

This book should be returned on or before the date
last marked below.

बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय का नाम रवीन्द्र ठाकुर और शरत्चन्द्र के साथ लिया जाता है । उनकी रचनाओं से न केवल बंगला साहित्य अपितु समूचा भारतीय साहित्य गौरवान्वित हुआ है । उनके उपन्यास अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कर चुके हैं ।

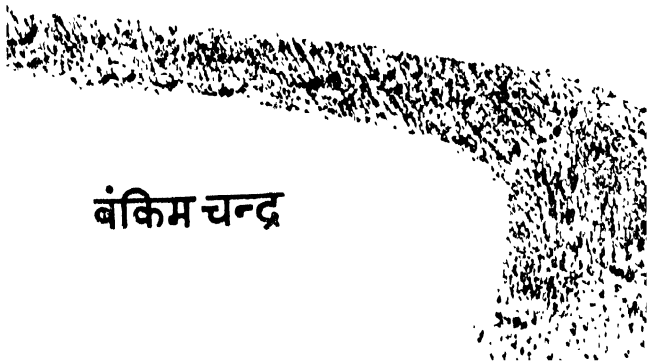
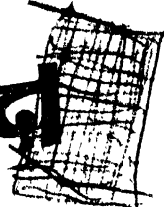
‘विष-वृक्ष’ में दो युवतियों के हृदय के भावों का सूक्ष्म चित्रण हुआ है । दोनों एक ही पुरुष से प्रेम करती हैं । उनका प्रेम एक-दूसरे को चुनौती-सी देता हुआ बढ़ता है, और अपनी अन्तिम सीमा पर पहुँचकर पाठकों के हृदय में एक टीस-सी पैदा कर देता है । श्रीरामनाथ ‘सुमन’ ने इसे ऐसे सुन्दर ढंग से संक्षिप्त किया है कि मूल का सा आनन्द आता है ।



हिन्द पॉकेट बुक्स प्राइवेट लिमिटेड
जी० टी० रोड, शाहदरा, दिल्ली-३२



विषवृद्ध



बंकिम चन्द्र

अनुवादक
श्रीरामनाथ 'सुमन'



VISH-VRIKSHA : NOVEL

BANKIM CHANDRA CHATTOPADHYAYA

मूल्य : एक रुपया

विष-वृक्ष

नगेन्द्र नाव पर चले जा रहे थे। जेठ का महीना था; आंधी-पानी का समय होने के कारण स्त्री सूर्यमुखी ने चलते समय अपने सिर की कसम धराकर कहा था कि देखो, बड़ी सावधानी से नाव ले जाना और आंधी-पानी का ज़रा भी संकेत मिलते ही उसे किनारे लगा देना; आंधी के समय कदापि नाव पर न रहना। नगेन्द्र सूर्यमुखी से ऐसी प्रतिज्ञा करके ही नाव पर चढ़ पाए थे। काम आवश्यक था और कलकत्ता गए बिना काम नहीं चल सकता था, अन्यथा सूर्यमुखी उन्हें जाने ही न देती।

नगेन्द्र बड़े ज़मींदार हैं; लक्ष्मी की उनपर विशेष कृपा है। घर गोविन्दपुर है। युवा हैं; अभी कुल तीस वर्ष के होंगे। जिस बजरे पर कलकत्ता जा रहे हैं, वह उनका अपना है।

पहले दो-चार दिन तो अच्छी तरह बीत गए। नगेन्द्र देखते कि स्रोतस्विनी का जल हवा से खेलता और कल-कल शब्द करता हुआ निर्दिष्ट लक्ष्य की ओर चला जा रहा है। हवा के झोंकों से जल चंचल और तरंगित होता है। सूर्य की किरणें जब जल को स्पर्श करती हैं तो अनिर्वचनीय सुषमा की सृष्टि होती है। अश्रान्त वायु और अनन्त जल की यह परस्पर क्रीड़ा बड़ी मनोहारिणी है। किनारों की ओर चरवाहे पशु चरा रहे हैं—कोई-कोई पेड़ की छाया में बैठा विरहा अलाप रहा है, कोई गप्प लगाने या चना-चबेना खाने में व्यस्त है। किसान खेतों में हल चला रहे हैं; बीच-

बीच में बेचारे बैलों को दो-एक सोटे भी जड़ देते हैं और कभी-कभी उन्हें तरह-तरह की गालियां देते हैं। इस गाली-वर्षा से कृतार्थ होने से उनके मालिक लोग भी नहीं बचते। जहां घाट है वहां इन किसानों की स्त्रियां घड़ा लिए, रुपये की ताबीज़, महीनों के मैले कपड़े पहने बैठी हैं। उनमें से कोई-कोई अपने सिर को मिट्टी से मल-मलकर धो रही हैं, कोई अपने बच्चे को रोने से चुप कराने के लिए मार रही है, कोई पड़ोसियों को गालियां सुना रही है, कोई मैले कपड़े साफ कर रही है। किसी-किसी घाट पर निकटवर्ती ग्राम की कुलांगनाएं बैठकर वहां की शोभा बढ़ा रही हैं; वृद्धाएं व्याख्यान दे रही हैं; प्रौढ़ाएं शिवलिंग-पूजन में व्यस्त हैं। युवतियां हाथ-भर लम्बे घूंघट से अपने मुख को छिपाकर जल में डूबकी लगाती हैं। बालक-बालिकाएं हल्ला मचाकर एक-दूसरे पर कीचड़ फेंकने, पूजन के फल चुराकर खा जाने, तैरने और एक-दूसरे पर छींटे उड़ाने में लगे हुए हैं। कभी-कभी किसी ध्यानमग्न रमणी के आगे से शिवलिंग उठाकर भाग जाते हैं। ब्राह्मण भलेमानुसों की तरह बैठे गंगालहरी का पाठ कर रहे हैं और बीच-बीच में कनखियों से कण्ठ तक जल में बैठी हुई रमणियों की ओर देख भी लेते हैं। आकाश में सूर्यतापसंतप्त श्वेत कादम्बिनी इधर-उधर दौड़ती-फिरती है; उसके नीचे काले बिन्दुओं के समान दीख पड़नेवाले पक्षी उड़ रहे हैं। नारियल के पेड़ पर बैठी हुई चील राजमंत्रिणी की भांति चारों ओर देख रही है कि किसपर चोंच मारूं। बेचारा वगुला क्षुद्रजन है; वह कीचड़ में ही चहलकदमी कर रहा है। पन-डुब्बियां बड़ी रसिक जान पड़ती हैं; नदी में डूबकर उसके हृदय की थाह लगा रही हैं। जिन नावों पर केवल मछुए हैं वे स्वाथ के पीछे बड़े वेग से दौड़ी जा रही हैं, किन्तु जिनपर यात्री हैं वे गजेन्द्र-गति से धीरे-धीरे जाती हैं। जिन नावों पर माल लदा है, वे और भी धीरे-धीरे जा रही हैं; जान पड़ता है मानो दूसरों के बोझ से मरी जा रही हैं।

इन सब सुखकर एवं नयनानन्ददायी दृश्यों को देखते हुए नगेन्द्र दो-चार दिन तक बड़े मजे में चले गए, किन्तु इसके पश्चात्

एक दिन अकस्मात् आकाश में मेघ का एक टुकड़ा दीख पड़ा । देखते-देखते उसने सम्पूर्ण आकाश को ढंक लिया । नदी की कालिमा बढ़ने लगी और वृक्षों की हरियाली उस अन्धकार-राशि में धीरे-धीरे विलीन होने लगी । आकाश का रंग देखकर और सूर्यमुखी से कीहुई अपनी प्रतिज्ञा का स्मरण करके नगेन्द्र ने मल्लाहों से कहा, “नाव किनारे लगाओ ।”

रहमतुल्ला इस समय नमाज पढ़ रहा था, इसलिए उसने इस बात का कोई उत्तर न दिया । रहमत ने केवट का काम कभी किया नहीं था । उसके नाना की मौसी मल्लाह की लड़की थी; इसी बल पर वह मल्लाहगीरी का उम्मीदवार हुआ था । भाग्य ने उसकी सहायता की; नौकरी मिल गई । वह शीनकाफ में दुस्त है । नमाज खत्म होने पर बाबू की ओर मुंह करके उसने कहा, “डर क्या है सरकार ? आप फिर न करें ।”

रहमत के इतने साहस का कारण यह था कि किनारा नाव से थोड़ी ही दूर था । बात की बात में नाव किनारे जा लगी । मल्लाहों ने उतरकर नाव किनारे बांध दी ।

पर रहमत के ऊपर देवतागण क्रुद्ध थे । आंधी ने धीरे-धीरे भयंकर रूप धारण किया । कुछ देर तक वृक्षों के साथ कुश्ती लड़ने के बाद उसने अपनी मंगिनी वर्षा को भी याद किया । दोनों ने मिलकर बड़ा उत्पात मचाया; अपने आगे पेड़ों के कन्धे झुका दिए, हाथ-सी डालियां तोड़ दीं, लताओं को छिन्न-भिन्न कर दिया और नदी के जल को उछालना शुरू कर दिया । इस प्रकार इनके उपद्रवों से शांत प्रकृति में खलवली मच गई । एक ने रहमत की टोपी उड़ाई, दूसरे ने उसके शरीर को भिगोना आरंभ कर दिया । मांझियों ने पाल गिरा दिया । नगेन्द्र ने बजरे की सब खिड़कियां बन्द कर लीं । नौकर-चाकर मिलकर नाव पर की वस्तुओं की सार-संभाल करने लगे ।

नगेन्द्र बड़ी विपत्ति में पड़े । आंधी-पानी के कारण नाव छोड़ देने से मांझी लोग अपने मन में कायर समझेंगे और नहीं उतरते तो सूर्यमुखी के प्रति विश्वासघात होता है । इसी सात-पांच में पड़े

थे कि सौभाग्यवश रहमत ने स्वयं ही आकर अनुरोध किया, “सरकार ! आंधी तेज होती जाती है, क्या जाने कैसा पड़े; इस समय आपका नाव से उतर जाना ही अच्छा है।” नगेन्द्र नाव से उतर गए।

पर आंधी-पानी में नदी के तट पर मैदान में खड़ा रहना साक्षर-रण कार्य नहीं। एक तो सन्ध्या का समय, दूसरे आंधी थमने के कोई लक्षण नहीं; इसलिए नगेन्द्र आश्रयस्थल की खोज में गांव की ओर चले। नदी के तट से गांव कुछ दूर था। नगेन्द्र पंकिल पथ से धीरे-धीरे बढ़ने लगे। थोड़ी देर में वृष्टि रुक गई, आंधी भी कुछ कम हो गई; किन्तु बदली गहरी है, रात में पानी पड़ने की संभावना है, इसीलिए नगेन्द्र लौटे नहीं, बड़े ही चले गए।

गहरी बदली होने के कारण सांभ को ही अंधियारी इतनी ज्यादा हो गई कि गांव, मैदान, घर, नदी, पथ कुछ सूझ नहीं पड़ता। केवल वृक्षों की श्रेणी में जुगनू हीरों की तरह चमक उठते हैं। काले मेघों की गोद में पड़ी हुई बिजली बार-बार चमककर कह जाती है कि स्त्रियों का क्रोध एकबारगी शान्त नहीं होता। ऐसे भयानक समय में नये जल से प्रसन्न होकर केवल मेंढकगण आनन्दोत्सव मना रहे हैं। जरा ध्यान देने पर भिल्लियों की भंकार भी सुनाई पड़ती है। वृक्षों की चोटियों से पत्तों पर और पत्तों से जल की बूंदों के पटपट गिरने, पानी में सियारों के कूद-फांद मचाने और बीच-बीच में पक्षियों के पर फटफटाने के शब्द भी सुन पड़ते हैं। कभी-कभी हवा के एकाएक हरहराकर चलने के कारण वृक्षों से बूंदों के एकसाथ गिरने का शब्द भी होता है।

थोड़ा और आगे जाने पर नगेन्द्र को कुछ दूर पर टिमटिमाता हुआ प्रकाश दीख पड़ा। जलप्लावित भूमि को लांगते और टहनियों से टपकनेवाले जल से भीगे वृक्षों के नीचे खड़े सियारों को पदध्वनि से भयभीत करते नगेन्द्र उसी प्रकाश की ओर चले और अन्त में बड़े कष्ट से उसके पास पहुंचे। उन्होंने देखा कि ईंटों के बने पुराने अध-गिरे घर से यह प्रकाश आ रहा है और घर का द्वार खुला है। नौकर को बाहर खड़ा कर नगेन्द्र ने भीतर प्रवेश किया।

नगेन्द्र ने भीतर जाकर देखा कि मकान साधारण नहीं है किन्तु इस समय उसमें सम्पत्ति का कोई चिह्न नहीं है; कोठे-कोठरियां सभी टूटी पड़ी हैं जिनमें कूड़े का ढेर है। मकान की इस समय जो अवस्था है उसे देखकर कोई यह अनुमान नहीं कर सकता कि इसमें कोई रहता भी होगा। स्थान-स्थान पर उलूकों, चूहों और नेबलों ने अड़्डे बना रखे हैं। केवल एक कमरे में एक क्षीणालोक दीपक टिमटिमा रहा था। उसी कमरे में नगेन्द्र ने प्रवेश करके देखा कि वहां मनुष्यों के जीवन-निर्वाह योग्य दो-एक चीजें हैं जिनसे मकान-मालिक की घोर दरिद्रता का पता लगता है—एक टूटा-फूटा चूल्हा, दो-एक हांडियां और तीन-चार बर्तनों को छोड़ वहां और कुछ विशेष नहीं था। दीवार में चारों ओर भाले लगे हुए हैं; एक कोना दिये से निकले धुएं के कारण काला हो रहा है। चारों ओर मच्छर-मकड़ियां, चूहे और छिपकलियां स्वतंत्रतापूर्वक विचरण कर रही हैं। जीर्ण खाट पर एक बूढ़ा पड़ा हुआ है। उसे देखने से जान पड़ता है कि उसकी अन्तिम अवस्था निकट है। आंखें निस्तेज होती जा रही थीं, होंठ कांप रहे थे और सांस तेजी से चल रही थी। बुढ़े के बिछौने के पास ही ईंट पर मिट्टी का एक दीपक रखा हुआ था; उसमें भी बिछौने पर पड़े हुए जीवन-प्रदीप की तरह तेल का अभाव था। परन्तु शय्या की बगल में ही एक और दीपशिखा थी—एक सुन्दरी चम्पकवर्णी बालिका।

दीपक के मंद प्रकाश अथवा घर के दोनों प्राणियों के अपनी चिन्ता में ही डूबे रहने के कारण किसीने नगेन्द्र को मकान में आते हुए नहीं देखा। नगेन्द्र द्वार पर खड़े होकर उस वृद्ध की करुणा-जनक बातें सुनने लगे। वे दोनों, वृद्ध और बालिका, इस संसार में निःसहाय थे। एक दिन वे धनी थे, दरवाजे पर आदमियों की भीड़ लगी रहती थी; दास-दासियों एवं हितू-मित्रों की कमी नहीं थी; किन्तु चंचला लक्ष्मी के साथ ही धीरे-धीरे सब चला गया। दारिद्र्य-पीड़ा से पुत्र-कन्यादि के मुंह हिमप्रसित कमल के समान सूखते देखकर पहले मालकिन सैकत-शय्या पर सदैव के लिए सो गई। धीरे-धीरे और सब तारिकाएं भी उसी चन्द्रमा के साथ अस्त

हो गई। एक पुत्र, जो पिता की बुढ़ाई का सहारा था, सदैव के लिए महानिद्रा में लीन हो गया। अब केवल वृद्ध और बालिका उस निर्जन मकान में रहने लगे। दोनों एक-दूसरे के जीवन के अवलम्ब थे। कुन्दनन्दिनी विवाह की अवस्था पार कर चुकी थी, किन्तु वही वृद्ध के जीवन का एकमात्र सहारा थी, उसके बिना वृद्ध जी नहीं सकता था, अतएव जीते-जी उसका ब्याह न कर सका। ब्याह की बात मन में उठने पर सोचता, 'मैं अकेले कहां और कैसे रहूंगा?' यह बात एक बार भी उसके मन में नहीं आई कि जिस दिन एका-एक मेरी जीवन-लीला समाप्त हो जाएगी, उस दिन कुन्द को किसके पास छोड़ जाऊंगा? आज अकस्मात् यमदूत आकर शय्या के पास खड़े हो गए। वृद्ध तो चला, पर कुन्दनन्दिनी अब क्या करेगी?

वृद्ध की प्रत्येक सांस से इस चिन्ता की गंभीर यंत्रणा की सूचना मिलती थी। उसके नेत्रों से निरन्तर अश्रुधारा प्रवाहित हो रही थी और प्रस्तरमूर्ति के समान वह दीन-हीन, निस्सहाय बालिका अपने मरणोन्मुख पिता की ओर देख रही थी—अपने को भूलकर, 'कल मेरा क्या होगा, कहां रहूंगी' इत्यादि सब कुछ भूलकर जानेवाले के मुख की ओर स्थिर नेत्रों से देख रही थी। धीरे-धीरे वृद्ध की बोली क्षीण और अस्पष्ट होने लगी, प्राण कण्ठगत हुआ, आंखें पथरा गईं और फिर व्यथित प्राण-पंखी सदैव के लिए देह के पिंजरे को छोड़कर उड़ गया।

उस निर्जन गृह में, दीपक के क्षीण आलोक में, कुन्दनन्दिनी पिता की ओर ध्यान लगाए बैठी थी। रात बड़ी अंधेरी है, रह-रहकर बूंदों के गिरने का शब्द हो रहा है, हवा के भोंकों से घर के टूटे किवाड़ खटखटा उठते हैं। ऐसे ही समय अपनी वृद्धावस्था को प्राप्त वह दीपक भी दो-चार बार जोर से भभककर बुझ गया।

नगेन्द्र दबे पांव मकान से बाहर निकल आया।

रात का समय है। उस अंधेरे खंडहर में बूढ़ा मरा पड़ा है।

कुन्द ने एक बार पुकारा, “पिताजी !” उत्तर कुछ नहीं मिला। कुन्द ने समझा, पिता सो रहे हैं। फिर ध्यान आया, कहीं मर तो नहीं गए ! पर ऐसा सोचने-समझने का साहस उसे नहीं हुआ। पिता की देह पर पंखा झलने और सोचने लगी कि अभी तो पिता सो रहे हैं, पर उनके मरने पर मेरी क्या दशा होगी ? इस चिन्ता का भी वह कुछ निर्णय न कर सकी। रात-दिन जगकर पिता की सेवा-सुश्रूषा से थकी होने के कारण उसे झपकी-सी आ गई। ताड़ का पंखा लिए वह उसी कठोर ठंडी धरती पर बिना किसी बिछौने के अपनी मृणाल जैसी कोमल बांह के सहारे सो गई।

निद्रावस्था में कुन्द ने एक स्वप्न देखा — रात का समय है। बिखरी चांदनी में सर्वत्र शांति है। उस प्रशांत नीलाकाश में एक बड़े चन्द्र का उदय हुआ है। उतना बड़ा चन्द्रमा कुन्द ने आज तक नहीं देखा। चन्द्रमा में तेज अधिक है, पर उसकी प्रभा आंखों को सुखद मालूम पड़ती है। धीरे-धीरे कुन्द ने देखा कि चन्द्रमण्डल में चंद्रमा नहीं है, उसके स्थान पर एक ज्योतिर्मयी देवीमूर्ति विराजमान है। फिर वह ज्योतिर्मयी प्रतिमा आकाश से धीरे-धीरे नीचे उतरने लगी। देखते-देखते वह चंद्रमण्डल कुन्द के सिर पर आ गया। तब कुन्द ने देखा कि चंद्रमण्डल के अन्दर बैठी किरीट कुण्डल-युक्त प्रभामयी मूर्ति किसी स्त्री की है। उसके मुख पर असीम करुणा है, होंठों पर स्नेहसिक्त हास्यरेखा थिरक रही है। देखते ही कुन्द पहचान गई; भयभीत और आनंदित हुई। वह उसकी मृत माता थी। ज्योतिर्मयी मूर्ति ने बड़े स्नेह से कुन्द को ज़मीन से उठाकर अपनी गोद में ले लिया। मातृहीना कुन्द बहुत दिनों बाद आज ‘मां’ कहकर कृतार्थ हुई। इसके बाद उस मूर्ति ने प्रेमपूर्वक कुन्द का मुह चूमकर कहा, “बेटी ! तुझे बहुत दुःख सहने पड़े। मैं पहले ही जानती थी कि तू कष्ट पाएगी। तेरी अवस्था कम है, फूल समान कोमल देह है, तू अधिक कष्ट नहीं सह सकेगी। संसार को छोड़ मेरे साथ चल।” कुन्द ने उसी स्वप्नावस्था में पूछा, “कहां ?” मां ने उंगली से प्रज्वलित नक्षत्र-लोक दिखाकर कहा, “वहां चलना

होगा।” कुन्द बोली, “मुझमें इतनी दूर जाने की शक्ति नहीं है।” उत्तर सुनकर मां का करुण मुख कुछ विरक्त हो गया। वे बोलीं, “बेटी, जैसी इच्छा हो कर। मेरे साथ चलती तो तेरा मंगल होता, पर जाने दे। एक दिन उसी नक्षत्र-लोक में आने के लिए तू कातर होगी। मैं तेरे पास एक बार और आऊंगी, उस समय इच्छा हो तो मेरे साथ चलना। मैं जिधर दिखाती हूँ उस ओर देख। वहां दो मनुष्यों की मूर्तियां हैं। यही दोनों संसार में तेरे सुख-दुःख के कारण होंगे। यदि तुझसे हो सके तो विषधर समझकर इनका त्याग करना। जिस रास्ते से ये चलने की कहें, उधर से कभी न जाना।”

इसके बाद देवी ने उंगली से आकाश की ओर संकेत किया। कुन्द ने देखा, नील नभ पर एक देवोपम पुरुष-मूर्ति अंकित है। उन्नत, प्रशस्त और प्रशान्त ललाट, सरल करुणामयी दृष्टि, हंस के समान गर्दन तथा महापुरुष के अन्यान्य लक्षणों से संयुक्त इस पुरुष को देखकर कोई अनुमान भी नहीं कर सकता कि ऐसे पुरुष से आशंका की कुछ संभावना है। देखते-देखते सागर में उठे बुल-बुले की तरह वह मूर्ति आकाश में विलीन हो गई। मां ने कहा, “इनकी देवोपम कांति देखकर भूलना मत। सज्जन होकर भी ये तेरे अमंगल के कारण हो सकते हैं, अतः इन्हें सर्प समान भया-घना समझ दूर से ही नमस्कार करना।” फिर मां ने आकाश की दूसरी ओर संकेत किया। इस बार कुन्द ने देखा कि जो मूर्ति उदय हुई है वह एक सुन्दरी पद्मपलाश-नयना युवती की है। मां ने कहा, “यह स्त्री-रूप में साक्षात् राक्षसी है। इससे सदा दूर रहना।”

इसके बाद आकाश में सहसा अंधेरा हो गया। वह चन्द्रमण्डल तथा मूर्तियां उसी आकाश में विलीन हो गईं।

कुन्द की नींद उचट गई।

नगेन्द्र के कहने-सुनने से गांव के कुछ लोग तो कर्तव्यवश, कुछ संकोच से मृतक का दाह-संस्कार करने की तैयारी करने लगे। पड़ोस की एक स्त्री कुन्द के पास रही। कुन्द ने जब देखा कि अग्नि-संस्कार के लिए लोग पिता को उठाकर ले गए, तब उसे उनकी मृत्यु का विश्वास हुआ और वह रोने लगी।

कुछ देर बाद पड़ोसिन अपने घर का काम-धंधा करने के लिए चली गई और अपनी कन्या चम्पा को उसके पास भेज दिया। चम्पा इधर-उधर की अनेक बातें कर उसे समझाने लगी; किन्तु उसने देखा कि कुन्द उसकी किसी बात पर ध्यान नहीं देती, केवल रोती और आकाश की ओर देखती है। तब चम्पा ने पूछा, “तू बार-बार आकाश की ओर क्या देखती है?”

कुन्द ने कहा, “आकाश से कल मेरी मां आई थी। उसने मुझे अपने साथ चलने को कहा था। उस समय मेरी मति भ्रष्ट हो गई; मैं डर के मारे उसके साथ नहीं गई। अब पछताती हूं। इस बार आती तो अवश्य उसके साथ चली जाती। इसीलिए बार-बार आकाश की ओर देख रही हूं।”

चम्पा ने चकित होकर कहा, “हैं! तुम कह क्या रही हो? क्या मरा हुआ आदमी भी लौटकर आ सकता है?”

कुन्द ने रात का सारा सपना चम्पा को कह सुनाया। सुनकर चम्पा विस्मित हुई। बोली, “तुमने आकाश में जिस पुरुष और स्त्री को देखा था, उन्हें पहचानती हो?”

कुन्द बोली, “नहीं, मैंने कभी देखा नहीं। वैसा सुन्दर पुरुष संसार में दुर्लभ ही है।”

उधर नगेन्द्र ने सवेरे ही गांव वालों को बुलाकर पूछा, “उस कन्या का क्या होगा? वह कहां रहेगी? क्या उसका कोई संबंधी यहां है?”

सभीने कहा, “इसका कोई अपना यहां नहीं है।”

नगेन्द्र बोले, “तब तुम सब मिलकर उसका प्रबन्ध करो; उसका विवाह कर दो। उसकी रक्षा और विवाह में जो व्यय होगा वह मैं दूंगा।” उसके भोजन-वस्त्र का मासिक व्यय देने का भी नगेन्द्र ने आश्वासन दिया।

नगेन्द्र यदि नकद रुपये गिन देते तो शायद उस समय बहुत-से लोग तैयार हो जाते और उनके चले जाने पर खदेड़ देते या दासी रख लेते; पर नगेन्द्र ऐसे मूर्ख नहीं थे इसीलिए किसीने उनकी बात पर ज्यादा ध्यान न दिया ।

तब एक वृद्ध ने कहा, “श्याम बाज़ार में इसकी मौसी का घर है । विनोद घोष इसके मौसा का नाम है । आप कलकत्ता जा रहे हैं; यदि इसको वहां पहुंचा देते तो इस कायस्थ-कन्या का बड़ा उपकार होता और आपकी जाति-हितैषिता भी सिद्ध होती ।”

नगेन्द्र राजी हो गए । कुन्द को बुलाने के लिए आदमी भेजा गया । चम्पा के साथ कुन्द आई ।

दूर से ही नगेन्द्र को देखकर कुन्द स्तंभित हो गई; आगे पैर नहीं पड़े । विस्मयपूर्ण नेत्रों से नगेन्द्र को देखने लगी ।

चम्पा ने पूछा, “हैं ! खड़ी क्यों हो गई ?”

कुन्द ने उंगली से संकेत कर कहा, “यही तो हैं !”

चम्पा ने पूछा, “ये कौन हैं ?”

कुन्द बोली, “जिसे मां ने आकाश में दिखलाया था ।”

सुनकर चम्पा भी विस्मित हुई । दोनों को खड़ी देख नगेन्द्र स्वयं ही उसके पास आए और जो बात तय हुई थी वह सब समझाकर कुन्द को बता दी । कुन्द ने कुछ उत्तर नहीं दिया, केवल आश्चर्य-चकित-सी नगेन्द्र की ओर देखती रही ।

नगेन्द्र कुन्द को अपने साथ कलकत्ता ले आए । उन्होंने उसके मौसा विनोद घोष की बड़ी खोज कराई, किन्तु श्याम बाज़ार में उस नाम के किसी आदमी का पता नहीं लगा । विनोददास नाम का एक आदमी मिला भी, किन्तु उसने कुन्द का सम्बन्धी होना अस्वीकार किया । निदान कुन्द नगेन्द्र के ही गले पड़ी ।

नगेन्द्र की कमल नाम की एक छोटी बहिन थी । उसकी ससुराल भी कलकत्ता में ही थी । श्रीशचन्द्र मित्र उसके स्वामी थे ।

श्रीश बाबू सम्पन्न व्यक्ति थे। वे एक बड़े कारखाने में मुन्शी थे। नगेन्द्र से उनका बड़ा प्रेम था, इसलिए नगेन्द्र कुन्द को वहीं ले गए। कमल को बुलाकर कुन्द का सारा परिचय उसे दे दिया।

कमल की अवस्था अभी अठारह वर्ष की होगी। रंग-रूप नगेन्द्र के समान ही है। दोनों भाई-बहन सुन्दर हैं। विशेषतः कमल की प्रसिद्धि उसकी विद्या के कारण थी। नगेन्द्र के पिता स्त्री-शिक्षा के प्रेमी थे। उन्होंने मिस टेम्पल नामक एक अंग्रेज अध्यापिका रखकर कमल और सूर्यमुखी को बड़े यत्न से शिक्षा दिलाई थी। कमल की साम अभी जीवित हैं, किन्तु वे श्रीश के पैतृक निवासस्थान पर ही रहती हैं। कलकत्ता में कमल ही घर की मालकिन है।

नगेन्द्र ने कुन्द का परिचय देने के बाद कमल से कहा, “इस समय यदि तुम इसे न रखोगी तो मैं बड़ी कठिनाई में पड़ूँगा। इसके रहने योग्य मेरी दृष्टि में और कोई दूसरी जगह नहीं है। जब जाऊँगा, तब इसे अपने साथ गोविन्दपुर लेता जाऊँगा।”

कमल बड़ी चपल है। नगेन्द्र के पीछे हटते ही वह कुन्द को घसीटकर एक छोटे हौज के पास ले गई जिसमें थोड़ा गर्म जल था। उसीमें उसे ढकेल दिया। इस आकस्मिक कार्य से कुन्द डर-सी गई। पर कमल एक बट्टी सुगन्धित साबुन लेकर उसे मल-मलकर नहलाने लगी। कमल को स्वयं यह कार्य करते देख एक दासी दौड़ी आई, परन्तु कमल ने छोटे उड़ाकर उसे भगा दिया।

कमल ने अपने हाथों कुन्द को स्नान कराया। फिर एक सुन्दर साड़ी पहना, सुगन्धित तेल डाल उसके बाल गूँथ दिए। कुछ आभूषण पहनाए, तब बोली, “जा, अब भैया को प्रणाम कर आ ; पर देख, इस मकान के मालिक को प्रणाम न करना, क्योंकि वे यदि तुम्हें देख लेंगे तो विवाह किए बिना नहीं रहेंगे।”

नगेन्द्र ने कुन्द का सब हाल सूर्यमुखी को लिख भेजा। हरदेव घोष नाम के अपने एक मित्र को पत्र लिखते हुए उन्होंने लिखा, “अच्छा बताओ, स्त्रियाँ सबसे सुन्दर किस अवस्था में जान पड़ती हैं? तुम तो चालीस वर्ष के बाद ही बताओगे क्योंकि तुम्हारी गृहिणी

इससे कम की नहीं होंगी। कुन्द नाम की जिस कन्या के सम्बन्ध में मैंने लिखा है उसकी अवस्था अभी तेरह वर्ष की है। उसे देखने से मुझे मालूम पड़ता है कि यही सुन्दरता का समय है। यौवन-संचार के पूर्व जो माधुरी और सरलता रहती है, बाद में वैसी नहीं रहती। कुन्द में सरलता है। अभी वह बिलकुल भोली है। संसार का अभी उसे कुछ ज्ञान नहीं है। अब भी रास्ते के लड़कों के साथ खेलना चाहती है और मना करने पर डरकर लौट आती है। कमल उसे पढ़ा रही है। उसका कहना है कि वह पढ़ने-लिखने में तेज है, किन्तु और कुछ नहीं जानती। उसकी आंखों में स्थिरता और गम्भीरता है। उसकी सुन्दरता का अधिक वर्णन करना असंगत होगा। तुम मेरी बात सुनकर मजाक उड़ाओगे, परन्तु उसे देखने का सौभाग्य प्राप्त करके मजाक उड़ाते तो जानता। आज तक मैं इसका निर्णय नहीं कर सका कि उसकी आंखें कैसी हैं। जान पड़ता है, वे आंखें इस लोक की नहीं हैं। इस लोक को वे भली भांति देखना नहीं चाहतीं, सदैव आकाश की अज्ञात सुन्दरता की ओर लगी रहती हैं। कितनी ही स्त्रियों की मुखाकृति उससे अच्छी है, किन्तु इतने पर भी मुझे मालूम पड़ता है कि ऐसी सरला सुन्दरी कहीं और नहीं है। जान पड़ता है, कुन्द में कोई ऐसी विशेषता है जो इस लोक की नहीं है—जैसे उसकी देह रक्त-मांस से नहीं बनी है, चन्द्रकिरणों ने पुष्प-गंध को शरीर-रूप में ढाल दिया है। उसकी उपमा याद नहीं पड़ती। वह एक अतुलनीय वस्तु है। उसकी चाल-ढाल, अंग-प्रत्यंग से शान्ति और पवित्रता टपकती है। यदि तुमने कभी सुन्दर निर्मल सरोवर में चन्द्ररश्मियों की शोभा देखी होगी तो उसके सौन्दर्य का कुछ अनुभव कर सकते हो, अन्यथा उसकी तुलना योग्य कोई चीज इस संसार में मुझे नहीं दीख पड़ती।”

कुछ दिनों बाद सूर्यमुखी का उत्तर आया। लिखा है :

“दासी से श्रीमान की सेवा में क्या कमी हुई है, सो ज्ञात नहीं। यदि कलकत्ता में तुम्हें अधिक दिन रहना है तो मैं क्यों न वहीं तुम्हारी चरण-सेवा के लिए उपस्थित होऊँ ? मेरा विशेष अनुरोध है। आज्ञा पाते ही सेवा में उपस्थित हूँगी।

“कहीं, पड़ी हुई एक बालिका पाकर मुझे भूल तो नहीं गए ? कितनी ही चीजें कच्ची रहने पर अच्छी मालूम पड़ती हैं। कच्चा नारियल शीतल होता है। जान पड़ता है, अभागिनी स्त्रियां भी ऐसी ही हैं, अन्यथा क्या तुम एक बालिका को पाकर मुझे भूल जाते ?

“हंसी-मजाक की बातें जाने दो। अब यह बताओ कि क्या तुमने उस बालिका पर अपना भी कुछ अधिकार रखा है ? यदि उसपर तुम्हारा अधिकार होता तो मैं तुमसे उसकी भिक्षा मांगती। तुम कोई चीज पाओ तो उसपर मेरा भी अधिकार रहना उचित है, परन्तु आजकल तो देख रही हूं कि तुम्हारी पाई हुई चीजों पर तुम्हारी बहिन का ही अधिकार रहता है।

“तुम पूछोगे कि बालिका को लेकर मैं क्या करूंगी। मेरी इच्छा उसका ताराचरण से व्याह कर देने की है। उसके लिए कितने दिनों से मैं एक योग्य पात्री ढूंढ़ रही हूं। तुम इसे जानते हो। सौभाग्य से एक अच्छी लड़की मिल गई है। कमल यदि सरलता से उसका पिंड छोड़ दे तो आते समय उसे साथ ही लेते आना। मैंने कमल को अलग से भी लिख दिया है। मैं आभूषणादि बनवा रही हूं। अधिक दिनों तक वहां मत ठहरो। सुनती हूं, छः महीने तक उधर रहने से आदमी भेड़ बन जाता है। यदि स्वयं कुन्द से विवाह करने की इच्छा हो तो यह भी लिखना ; सब प्रबन्ध कर रखूंगी।”

ताराचरण का परिचय पीछे देंगे। यहां इतना ही कहना पर्याप्त है कि सूर्यमुखी के प्रस्ताव से नगेन्द्र और कमल दोनों सहमत हुए। कमल ने स्वयं भी कुन्द के लिए कुछ गहने बनवा दिए। कमल, सूर्य-मुखी और नगेन्द्र तीनों ने मिलकर इस समय विष-बीज का रोपण किया। पीछे तीनों को इसपर पछताना ही है।

कुछ दिनों बाद नगेन्द्र ने बजरे से गोविन्दपुर के लिए प्रस्थान किया। इस समय कुन्द स्वप्न की बात भूल-सी गई है। नगेन्द्र के साथ गोविन्दपुर जाते समय उसकी याद आई थी, किन्तु नगेन्द्र की करुणापूर्ण, सरल मुखकान्ति और सज्जनोचित लोक हितकर चरित्र

देखकर कुन्द किसी प्रकार यह मानने को तैयार नहीं हुई कि इनसे मेरी कुछ हानि हो सकती है।

सुनते हैं, महाकवि कालिदास को एक मालिन सदा फूल दे जाया करती थी। कालिदास दरिद्र ब्राह्मण थे, फूल का दाम नहीं दे सकते थे। दाम देने के बदले वे अपनी बनाई कविताएं मालिन को सुनाया करते थे। एक दिन की बात है, मालिन के सरोवर में एक सुन्दर कमल खिला। मालिन ने लाकर कमल कालिदास को उपहार में दिया। कालिदास पुरस्कार के बदले उसे मेघदूत सुनाने लगे। मेघदूत रस का समुद्र है, किन्तु उसके आरम्भ की कुछ कविताएं नीरस हैं। मालिन को वे अच्छी न लगीं। वह विरक्त-सी होकर उठ चली।

कवि ने पूछा, “कहां चली?”

मालिन ने प्रश्न किया, “तुम्हारी कविता में रस कहां है?”

कवि—तू कभी स्वर्ग नहीं जा सकती।

मालिन—क्यों?

कवि—स्वर्ग जाने के लिए सीढ़ियां हैं। लक्ष योजन तक सीढ़ियां चढ़ने के बाद स्वर्ग में पहुंचते हैं। आरम्भ की हमारी यह नीरस कविताएं भी सीढ़ियों के ही समान हैं। जब तुम शान्ति-पूर्वक दो-चार सीढ़ियां नहीं तय कर सकतीं, तब लाख योजन तक कैसे चलोगी?

मालिन को ब्राह्मण के शाप का भय हुआ। उसने अन्त तक मेघदूत काव्य सुना। सम्पूर्ण काव्य सुनकर वह अत्यन्त प्रसन्न हुई और दूसरे दिन उसके उपलक्ष्य में मदनमोहिनी नाम की सुन्दर माला गूंथकर कालिदास को पहनाई।

हमारी यह पुस्तक न तो स्वर्ग है, न लाख योजन तक इसमें सीढ़ियां हैं। रस थोड़ा है और सीढ़ियां भी कम हैं। आरम्भ के ये नीरस अध्याय ही उसकी सीढ़ियां हैं। यदि पाठकों में कोई उस

मालिन की तरह अधीर हो रहे हों तो उनके प्रति हम निवेदन करते हैं कि बिना इन सीढ़ियों को पार किए हुए रस-सागर के दर्शन नहीं हो सकते ।

सूर्यमुखी का मायका कलकत्ता में है । उसके पिता एक कुलीन कायस्थ थे और वहां के किसी बड़े कारखाने में खजांची का काम करते थे । सूर्यमुखी उनकी एकमात्र संतान है । लड़कपन में श्रीमती नाम की एक विधवा कायस्थ-स्त्री ने दासीभाव से उनके घर में रहकर सूर्य का पालन-पोषण किया था । श्रीमती का एक लड़का था ; उसका ही नाम ताराचरण है । वह सूर्य का साथी है । लड़कपन में सूर्य उसके साथ खेलती और उसे भाई कहकर पुकारती थी ।

श्रीमती रूपवती रमणी थी, अतएव वह शीघ्र ही विपद्जाल में फंसी । गांव के धनी व्यक्ति की आंख उसपर गड़ गई और वह उसे भगा ले गया । दोनों कहां चले गए, किसीको मालूम नहीं हुआ । श्रीमती को लौटते फिर किसीने नहीं देखा । ताराचरण श्रीमती के घर पर ही रहा । सूर्यमुखी के पिता दयालु थे । उन्होंने अनाथ बालक को अपनी सन्तान की भांति पाला-पोसा और छोटी-मोटी नौकरी में न लगाकर लिखना-पढ़ना सिखाने का विचार किया । ताराचरण एक मिशनरी स्कूल में पढ़ने लगा ।

उचित समय पर सूर्यमुखी का विवाह हुआ था । व्याह के दो-चार वर्षों बाद उसके पिता की मृत्यु हो गई । उस समय तक ताराचरण ने थोड़ा पढ़ना-लिखना सीख लिया था, किन्तु निर्वाह के लिए वह कहीं नौकरी न पा सका । सूर्य के पिता की मृत्यु हो जाने पर निरवलम्ब हो वह सूर्यमुखी के पास गया । सूर्य ने नगेन्द्र से बहुत कह सुनकर वहां एक स्कूल खुलवा दिया । ताराचरण उसमें अध्यापक हो गया । आजकल सरकारी महायता मिलने के कारण गांव-गांव में चुस्टधारी मास्टर दिखाई पड़ते हैं, किन्तु उस समय मास्टर इतने सुलभ नहीं थे । इसीलिए ग्राम्य-देवता के समान ताराचरण की पूजा होने लगी । उन्होंने अंग्रेजी की कुछ पुस्तकें पढ़ी थीं और गांव में यह बात फैल गई थी कि वे रेखागणित भी जानते हैं । इन्हीं

विशेषताओं के कारण वे देवीपुर के जमींदार देवेन्द्र बाबू के ब्रह्म-समाज में भर्ती हो गए और उनकी मुसाहिबी प्राप्त हो गई। ताराचरण हर हफ्ते ब्रह्मसमाज में विधवा-विवाह, स्त्री-शिक्षा और मूर्तिपूजा-खण्डन पर लेख लिखकर पढ़ा करते थे और 'हे कृष्णामय परमात्मन् !' कहकर लम्बे-चौड़े लेक्चर फटकारते थे। ये लेख कुछ तो 'तत्त्वबोधिनी' से नकल किए होते थे, कुछ स्कूल के किसी पण्डित से लिखवाए जाते थे। जहां होता वहीं वे यह दाग छेड़ देते, "तुम लोग ईंट-पत्थर की पूजा छोड़ो, घर की विधवाओं का विवाह करो, लड़कियों को पढ़ना-लिखना सिखाओ, उन्हें पिंजड़े में बन्द करके मत रखो, पर्दे से बाहर निकालो।" स्त्रियों की स्वतंत्रता पर इतना जोर इसीलिए देते थे कि उनका घर स्त्री-शून्य था। सूर्यमुखी ने विवाह के लिए बहुत यत्न किए, किन्तु मां के बाहर निकल जाने के कारण कोई कुलीन कायस्थ अपनी कन्या देने को तैयार नहीं हुआ। इसी समय नगेन्द्र के पत्र में कुन्द के रूप-गुण की प्रशंसा देख उससे सूर्यमुखी ने ताराचरण का विवाह करना तय कर लिया।

कुन्द नगेन्द्र के साथ गोविन्दपुर आई। वह नगेन्द्र की बृहत् अट्टालिका देख स्तब्ध हो गई। इतना बड़ा मकान उसने पहले नहीं देखा था। तिमहला भवन है। एक-एक महल एक-एक पुरी के समान है। महल, मंदिर, कचहरी, बाग, अतिथिशाला सब एक से एक सुन्दर हैं। तीन महल बाहर और तीन अन्दर हैं। अन्तःपुर का जो महल है वह नगेन्द्र, उनकी पत्नी और विशेष दासियों के लिए है। इसे नगेन्द्र ने नया ही बनवाया है। विशाल और सुन्दर है। पीछे के पुराने महल में आत्मीयों के कुटुम्बों की कन्याएं रहती हैं। मौसी, चाची, चचेरी बहिन इत्यादि के कारण सदा कोलाहल रहता है। अन्तःपुर के तीन महलों के पश्चात् पुष्पोद्यान है। उद्यान के बाद नीलघन के समान प्रशस्त सरोवर है। भवन के बाहर

गोशाला, अस्तबल इत्यादि हैं ।

कुन्द ने आश्चर्यपूर्वक नगेन्द्र के अपरिमित ऐश्वर्य को देखते हुए पालकी से अन्तःपुर में प्रवेश किया । सूर्यमुखी के निकट जाकर प्रणाम किया और आशीर्वाद पाकर आश्वस्त हुई ।

नगेन्द्र को स्वप्न में देखे हुए पुरुष की भांति पाकर कुन्द ने अनुमान किया था कि इनकी स्त्री ही स्वप्न में देखी हुई वह श्यामांगना होगी, किन्तु सूर्यमुखी को देखते ही उसका वह संदेह दूर हो गया । कुन्द ने देखा कि सूर्यमुखी उस स्त्री की भांति श्यामांगी नहीं है, तप्त सुवर्ण की भांति है । सूर्य की आंखें बड़ी-बड़ी और अलौकिक सौंदर्य-पूर्ण हैं ; स्वप्न में देखी स्त्री की ऐसी नहीं थीं । स्वप्न में जिस स्त्री को कुन्द ने देखा था वह छोटी थी, उसकी अवस्था भी बीस से अधिक नहीं थी ; सूर्य पचीस से कम न होगी । सूर्य के साथ उस स्त्री की कुछ भी समानता न देख कुन्द को शान्ति मिली ।

सूर्यमुखी ने कुन्द को आदरपूर्वक उतारा और प्रधान दासी को उसकी सेवा में नियुक्त कर दिया । दासी कुन्द को एक दूसरे कमरे में ले गई । बीच में कुन्द ने दासी को देख लिया । देखते ही कांप उठी ; पसीना आ गया । जिस स्त्री-मूर्ति को कुन्द ने आकाश में देखा था वह तो यही दासी है ।

कुन्द ने भय-विह्वल हो ठंडी सांस लेकर पूछा, “तू कौन है ?”
दासी बोली, “मेरा नाम हीरा है ।”

हमारे पाठक अप्रसन्न हो रहे होंगे, क्योंकि उपन्यासों की रीति के अनुसार विवाह प्रायः अन्त में होता है । फिर नायिका के साथ जिसका विवाह-संबंध होता है, उसे अत्यंत सुन्दर, सर्वगुणा-लंकृत, वीर और नायिका के प्रेम में विह्वल होना चाहिए । गरीब ताराचरण में ऐसी एक भी विशेषता नहीं । उसका शरीर तांबे के रंग का था, नाक चपटी थी और वीरता का अन्त स्कूल के छोटे-छोटे

विद्यार्थियों तक ही हो जाता था ।

कुन्द के गोविन्दपुर आने के बाद ही ताराचरण के साथ उसका विवाह हो गया । ताराचरण घर में एक अपूर्व सुन्दरी को लाए, किन्तु ऐसा करके वे एक और विपद में पड़ गए । पाठक भूले न होंगे कि स्त्री-शिक्षा और पर्दा-विरोध-संबंधी लेख ताराचरण ब्रह्मसमाज में पढ़ा करते थे । वाद-विवाद में बड़े गर्व के साथ कहते, “अपना विवाह होने पर मैं आदर्श उपस्थित करूंगा; अपनी स्त्री को पर्दे के बाहर रखूंगा ।” विवाह हो जाने पर कुन्द के सौंदर्य की प्रशंसा भी मित्र-मंडली में पहुंची । देवेन्द्र बाबू ने कहा, “क्यों भाई ! दूसरों की तरह तुम भी पुराने मूखों में जान पड़ते हो । अपनी स्त्री से हम लोगों की बातचीत क्यों नहीं कराते ?” ताराचरण बड़े लज्जित हुए । देवेन्द्र बाबू के अनुरोध की उपेक्षा नहीं कर सके; कुन्द को उनसे मिलाने की प्रतिज्ञा की, किन्तु सूर्यमुखी की नाराजगी का भय बना रहा । किसी तरह टालमटोल करते-करते एक वर्ष बिता दिया । इसके बाद काम चलता न देख मकान की मरम्मत का बहाना करके कुन्द को नगेन्द्र के यहां भेज दिया । मरम्मत हो जाने पर कुन्द फिर अपने घर आई । अब प्रतीक्षा न कर देवेन्द्र स्वयं ही एक दिन दल-बल-सहित ताराचरण के घर जा धमके । विवश हो ताराचरण ने कुन्द से परिचय करा दिया । कुन्द देवेन्द्र से क्या बातचीत करती ? थोड़ी देर तक घूंघट काढ़े, नीचा सिर किए रोती रही, फिर भाग गई । किन्तु इतनी ही देर में देवेन्द्र बाबू उसके सौंदर्य पर रीझ गए ; फिर उसे भूल न सके ।

कुछ दिनों बाद देवेन्द्र के यहां उत्सव हुआ । एक दासी कुन्द को निमंत्रण दे गई; किन्तु सूर्यमुखी को मालूम हुआ तो उसने कुन्द को वहां जाने से मना कर दिया । इसके कुछ समय बाद देवेन्द्र फिर ताराचरण के घर आकर कुन्द से भेंट कर गए । धीरे-धीरे यह खबर सूर्यमुखी के कान तक पहुंची । उसने ताराचरण को ऐसा फटकारा कि फिर देवेन्द्र बाबू को कुन्द से बातचीत करने का अवसर नहीं मिला ।

धीरे-धीरे तीन साल बीत गए । मलेरिया से ताराचरण की

मृत्यु हो जाने से कुन्द विधवा हो गई ।

पाठक अप्रसन्न न हों, यहां से उपन्यास का आरम्भ होता है ।
इतनी दूर आकर विष-वृक्ष का बीजारोपण हुआ ।

विधवा कुन्द, नगेन्द्र के यहां किसी प्रकार अपने दिन बिताने लगी । एक दिन दोपहर को गांव-घर की बहुतेरी स्त्रियां पुराने महल में बैठी थीं । कोई बाल बंधा रही है ; कोई सिर के पके बालों को चुनवा रही है ; कोई सी रही है ; कोई अपने लड़के को रोने के कारण और पीट रही है ; कोई कार्पेट बुन रही है ; कोई भरथरी-चरित्र पढ़ रही है ; कोई किमीकी निन्दा में लगी है ; कोई अपनी कार्य-कुशलता की पुरानी घटनाओं को सुना-सुनाकर डींग मार रही है ; जो रसोई में उचित मात्रा में नमक डालने की योग्यता नहीं रखती, वह अपने रंधन-कौशल का बखान कर रही है ; जिसका स्वामी गांव-भर में सबसे मूर्ख है, वह उसके पाण्डित्य का राग आलाप रही है ; जिनकी संतानें आवनूस के कुन्दों को मात करती हैं, वे अपने को रत्नगर्भा समझ लम्बी-चौड़ी हांक रही हैं ।

सूर्यमुखी इस मण्डली में नहीं दिखाई पड़ती । वह ऐसी मूर्खाओं के साथ नहीं उठती-बैठती और वह होती तो इन लोगों को इतनी स्वच्छन्दता से बात करने का अवसर भी न मिलता । सभी उससे डरते थे । पर अभागिनी कुन्द कहां जाती ? उसे तो इन्हीं लोगों में एक और बैठकर अपने दिन बिताने पड़ते थे । आज भी वह यहीं बैठी एक माता के अनुरोध पर उसके लड़के को अक्षर-ज्ञान करा रही थी ।

इसी समय 'जय राधे' कहती हुई एक वैष्णवी वहां आकर खड़ी हो गई ।

नगेन्द्र का पूजागृह अतिथि-समादर के लिए प्रसिद्ध था । रवि-वारादि को वहां चावल भी बांटे जाते थे । पर कोई वैष्णवी या अतिथि कभी अन्तःपुर में नहीं आ सकता था । इसीलिए 'जय राधे'

की ध्वनि सुनते ही एक स्त्री बोली, “कौन घर के भीतर चली आती है ? जा, उधर पूजावाले महल में...” किन्तु मुंह उठाते ही कौतूहलवश वह अपनी बात भी पूरी न कर सकी, वरन् धीरे से बोल उठी, “हैं ! यह कैसी वैष्णवी ?”

सबने ही विस्मयपूर्वक देखा कि वैष्णवी युवती है। अंग मानो साचे में ढले हुए हैं। कुन्द के अतिरिक्त वहां कोई दूसरी स्त्री उतनी सुन्दर नहीं है। उसके जैसे प्रफुल्लित अधर, सुन्दर नाक, विकसित कमल-तुल्य आंखें, चित्ररेखा-समान भ्रू-युगल, प्रशस्त ललाट, मृणाल-सी बांहें और शरीर का चंपई रंग बहुत कम स्त्रियों में देखे जाते हैं ; किन्तु वहां स्त्री-सौन्दर्य का कोई विचारक होता तो उसके शारीरिक गठन को देखकर कहता कि उसमें स्त्री-सुलभ लालित्य का अभाव है और चाल स्त्री की अपेक्षा पुरुष से अधिक मिलती-जुलती है। उसके नाक में बेसर है, बाल संवारे हुए हैं, देह में काले किनारे की साड़ी और हाथ में खंजड़ी है। बोली, “मेरा नाम हरिदासी है। क्या आप माताजी लोग गाना सुनेंगी ?” सबने हर्षपूर्वक अनुमोदन किया और तरह-तरह के गाने की फर्माइश की। कुन्द को संगीत से प्रेम था, किन्तु वह चुप रही। तब वैष्णवी ने उससे पूछा, “तुम नहीं बोलीं, तुम कैसा गाना पसन्द करती हो ?” कुन्द कुछ न बोली पर बगल में बैठी एक स्त्री के कान में धीरे से कह दिया, “कृष्ण-प्रेम-संबंधी कोई गीत गाने को कह दो।” स्त्री ने उसकी बात वैष्णवी तक पहुंचा दी।

वैष्णवी ने गाना शुरू किया। रमणी-मण्डल ने विमुग्ध होकर देखा कि उसका कण्ठस्वर समस्त हवेली को प्रतिध्वनित करता आकाश में गूंज उठा। उसकी संगीत-प्रणाली स्पष्ट बता रही थी कि वह पूर्ण संगीतज्ञा है और बचपन से ही अच्छा अभ्यास किया है। गीत समाप्त कर हरिदासी कुन्द के मुंह की ओर देखकर बोली, “गाते-गाते मुंह सूख गया, जरा जल तो दो।” कुन्द एक पात्र में जल ले आई। वैष्णवी ने कहा, “मैं तुम्हारा पात्र नहीं छू सकती, वहां चलकर ऊपर से पिला दो।” लोगों ने सोचा, वैष्णवी

पहले किसी अद्वैत जाति की रही होगी, इसीलिए ऐसा कह रही है । उसकी बात सुन कुन्द उसके पीछे जल गिराने के स्थान पर गई । वह स्थान कुछ दूर था ; धीरे से कही बात स्त्रियों की मंडली को सुनाई नहीं पड़ सकती थी । कुन्द जब उसके हाथ धुला रही थी, तब उसने पूछा, “क्यों जी ! तुम्हारा ही नाम कुन्द है ?”

कुन्द ने विस्मित होकर पूछा, “क्यों ?”

वैष्णवी—क्या तुमने कभी अपनी सास को देखा है ?

कुन्द—नहीं ।—कुन्द ने सुना था कि बहुत दिन पूर्व उसकी सास चरित्र-भ्रष्ट होकर घर से निकल गई है ।

वैष्णवी—तुम्हारी सास मेरे घर आकर टिकी हैं । तुम्हें देखने के लिए बहुत रो रही है । हजार बुरी हों, पर हैं तो सास ही । यहां आकर तो मालकिन को मुह दिखा नहीं सकतीं, क्यों नहीं एक दिन मेरे साथ चलकर उन्हें देख आतीं ?

कुन्द ने सिर हिलाकर वैष्णवी का प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया ; पर वह बार-बार अनुरोध करने लगी, तब कुन्द ने कहा, “मालकिन से कहे बिना मैं कही नहीं जा सकती ।” वैष्णवी ने बहुत कहा, पर कुन्द टस से मस न हुई । तब वैष्णवी बोली, “अच्छा, उनसे अनुमति ले लेना, मैं फिर कभी आकर तुम्हें ले जाऊंगी ; परन्तु देखो, सावधानी से कहना । बिना रोए-धोए वे तुम्हें अनुमति न देंगी ।”

वैष्णवी हाथ-मुंह धो मण्डली में लौट आई । पुरस्कार की प्रार्थना की । इसी समय सूर्यमुखी वहां आ गई । उसके आते ही मण्डली में सन्नाटा छा गया । दूर के रिश्ते में नगेन्द्र की मामी लगनेवाली एक बुढ़िया ने कहा, “यह वैष्णवी बड़ा अच्छा गाती है । गाओ हरिदासी, एक निर्गुण सुनाओ ।” वैष्णवी ने सूर का एक पद अत्यन्त ललित स्वर में गाया । गीत सुनकर सूर्यमुखी प्रसन्न हुई और यथेष्ट पुरस्कार देकर उसे विदा किया ।

वैष्णवी निकल देवीपुर गई। देवीपुर में लोहे की छड़ों से घिरा एक बाग है। बीच में एक सरोवर है। सरोवर के ऊपर बैठकखाना है। हरिदासी ने उसी उद्यान में प्रवेश किया। फिर बैठकखाने के एकान्त कमरे में जाकर अपना वेश बदलने लगी। बनावटी केशराशि, स्तन, बाली और चूड़ी सब निकाल दीं। अब एक युवा दिखाई पड़ा। युवा की अवस्था पच्चीस वर्ष के लगभग होगी, किन्तु मुख पर रोमावली का चिह्न भी नहीं है। मुख और गठन अच्छी है। कान्ति सुन्दर है। ये देवेन्द्र बाबू हैं। पाठक पहले इनका कुछ परिचय पा चुके हैं।

देवेन्द्र और नगेन्द्र एक ही वंश के हैं, किन्तु दोनों शाखाओं में कई पीढ़ियों से विवाद चला आता है। यहां तक कि दोनों शाखाओं के बाबुओं में बातचीत तक नहीं होती। बहुत दिनों से दोनों में मुकदमा चला आ रहा था। अन्त में एक बड़े मुकदमे में नगेन्द्र के पितामह ने देवेन्द्र के पिता को हरा दिया, तब से देवीपुर के बाबू बिलकुल कमजोर हो गए। मुकदमे के व्यय की डिग्री में उनका सब चला गया। तभी से देवीपुर का ह्रास और गोविन्दपुर की उन्नति होने लगी। दोनों घरानों में फिर कभी मेल नहीं हुआ।

देवेन्द्र के पिता ने खोए धन को प्राप्त करने का दूसरा उपाय किया। हरिपुर के जमींदार गणेश बाबू की एकमात्र कन्या हेमवती से देवेन्द्र का विवाह कर दिया। हेमवती कुरूप और वाचाल थी। अप्रिय बातें कहने और स्वार्थ साधने में उसका जोड़ नहीं था। विवाह के पूर्व देवेन्द्र का चरित्र निष्कलंक था, स्वभाव में गम्भीरता थी, किन्तु ब्याह उनके लिए काल हो गया। देवेन्द्र ने देखा कि स्त्री से किसी प्रकार के सुख की आशा करना व्यर्थ है। उनकी निराशा बढ़ती गई। पिता चल बसे। एक दिन हेम ने बड़ी जली-कटी सुनाई। इसपर उसे दो-चार लात जमाकर और उद्यान में अपने रहने के लिए कमरे बनवाने की आज्ञा देकर देवेन्द्र कलकत्ता चले गए। वहां जाकर भोग-विलास में डूब गए। पापाचार की भावना से जो मानसिक कष्ट होता, उसे दूर करने के लिए मद्य का अत्यधिक सेवन करने लगे।

धीरे-धीरे अभ्यास पड़ गया ; अनुताप की भावना भी मिट गई । लौटकर देवेन्द्र बागवाले नये बंगले में अकेले रहने और अपनी वासना पूर्ण करने लगे । ब्रह्मसमाज की स्थापना की, जहां विधवा-विवाह और पर्दा-प्रथा-त्याग इत्यादि पर व्याख्यान हुआ करते थे । ताराचरण और देवेन्द्र बाबू की राय मिलती थी । देवेन्द्र बाबू स्वभावतः अपने मतलब के लिए स्त्रियों को पिजड़े से बाहर करने पर बड़ा जोर देते थे ।

गोविन्दपुर से लौटकर देवेन्द्र ने वैष्णवी-वेश का परित्याग किया और अपने वास्तविक रूप में कमरे में जा बैठे । एक नौकर तम्बाकू भरकर दे गया । कुछ देर तक देवेन्द्र इस महादेवी के प्रसाद का आनन्द लेते रहे, किन्तु तृप्ति न हुई । तब दूसरी महाशक्ति की आराधना का उद्योग हुआ । बड़े भक्तिभाव से बोलत-वासिनी देवी की पूजा करने बैठे । इसी समय साज-सरंजाम के साथ गायक-वादक दल आ गया । कुछ देर यह सब चलता रहा । अन्त में वहां देवेन्द्र के समवयस्क एक कांतिमान युवक ने प्रवेश किया । ये देवेन्द्र के चचेरे भाई सुरेन्द्र थे । उनकी रहन-सहन, विद्या-बुद्धि सब देवेन्द्र के विपरीत थी । शान्त स्वभाव होने के कारण देवेन्द्र भी इनका आदर करते थे । सबके चले जाने पर सुरेन्द्र ने पूछा, “आज तुम्हारा शरीर कैसा है ?”

देवेन्द्र—शरीरं व्याधिमंदिरम् ।

सुरेन्द्र—हां, तुम्हारे लिए खास तौर से । आज ज्वर नहीं आया, तो भी यह सब कुछ दिनों के लिए बन्द कर देते तो अच्छा होता ।

देवेन्द्र—क्या मद्यपान ? तुमसे कितनी बार कहूं, वही तो मेरे प्राण का साथी है ।

सुरेन्द्र—प्राण का साथी कैसे ? न तो तुम्हारे संग आया है, न संग जाएगा । कितनों ने स्वाद लेकर छोड़ दिया है, तुम क्यों न त्याग करोगे ?

देवेन्द्र—किस सुख के लिए छोड़ूं ? सब किसी न किसी सुख की आशा में उसे छोड़ते हैं । मुझे तो किसी सुख की आशा

नहीं।

सुरेन्द्र—तो भी जीवन की आशा से, प्राण की रक्षा के लिए इसे छोड़ो।

देवेन्द्र—जिन्हें प्राण से मोह है, जीने में सुख है, वे जीवन की आशा से शराब छोड़ सकते हैं। मुझे जीने में क्या सुख है?

सुरेन्द्र की आंखें भर आईं। स्नेह-गद्गद कण्ठ से बोले, “तो हमारा अनुरोध न मानोगे?”

देवेन्द्र की आंखों में भी आंसू आ गए। उन्होंने कहा, “मुझे सत्पथ पर चलाने के लिए तुम्हारे सिवा कोई आग्रह या प्रयत्न नहीं करता। यदि मैं कभी शराब छोड़ सकूंगा तो तुम्हारे ही अनुरोध से……और……”

सुरेन्द्र—और क्या?

देवेन्द्र—अपनी स्त्री की मृत्यु का समाचार जिस दिन सुनूंगा, विश्वास करता हूँ कि उसी दिन शराब छोड़ सकूंगा। इस समय तो मेरे लिए मरना-जीना समान है।

सुरेन्द्र आंखों में आंसू भरकर हेमवती की निन्दा करते हुए लौट गए।

“प्राणाधिके कमल !

“चिरायु हो। तुम एक घर की मालकिन हो, किन्तु मैं तुम्हें एक छोटी बहिन के सिवा और कुछ नहीं समझती। तुम्हें पाला-पोसा और अक्षर-ज्ञान कराया है, पर अब तुम्हारे सुन्दर अक्षरों को देख अस्पष्ट अक्षरों में लिखी चिट्ठी भेजने में लज्जा लगती है। पर लज्जा करने से क्या होगा? हम लोगों के अब वे दिन नहीं रहे। वे दिन रहते तो मेरी ऐसी अवस्था होती? वह बात किसी से कहने की नहीं है; कहते हुए दुःख होता है, लज्जा भी होती है; किन्तु क्या करूँ……मन की जो दारुण व्यथा है, वह बिना कहे सही नहीं जाती। दूसरे किससे कहूँगी। तुम मेरी प्राणाधिक बहिन हो।

देख रही हूं कि इस समय तुम्हें छोड़ कोई मुझे प्यार नहीं करता और तुम्हारे भाई की बात तुम्हें छोड़ और दूसरे से कह भी तो नहीं सकती ।

“तुमने उस हतभागिनी कुन्द को जब देखा था तब वह छोटी बालिका थी, पर इस समय वह अट्टारह वर्ष की हो गई है । उसके सौन्दर्य को मैं अस्वीकार नहीं करती । अस्वीकार करूं भी कैसे ? वह सुन्दरता ही तो मेरा सर्वनाश करने को तैयार है ।

“मैंने स्वयं ही अपने लिए चिता तैयार की है । कुन्द यदि भूख-प्यास में मर जाती तो उसमें मेरी क्या हानि थी ? भगवान इतने आदमियों का प्रबन्ध कर रहे हैं, क्या उसके लिए कुछ उपाय न करते ? मैंने न जाने क्यों उसे घर में रख अपने पैर में कुल्हाड़ी मारी ?

“पृथ्वी पर मेरे लिए यदि कोई मुख है तो वह मेरे स्वामी है ; पृथ्वी पर मेरे लिए कोई बिन्ता है तो वह मेरे स्वामी हैं ; पृथ्वी पर मेरे लिए यदि कोई सम्पत्ति है तो वह मेरे स्वामी है । उसी स्वामी को कुन्द मेरे हृदय से काढ़ रही है । इस संसार में, मैं यदि कुछ चाहती हूं तो केवल अपने स्वामी का प्रेम । स्वामी के उसी स्नेह से कुन्द मुझे वंचित कर रही है ।

“अपने भाई को तुम कुछ बुरा न समझना ; मैं उनकी निन्दा नहीं कर रही हूं । वेधर्मात्मा हैं ; शत्रु भी उनके चरित्र में कोई कलंक नहीं दिखा सकता । मैं रोज़ देखती हूं कि वे बड़े यत्न और संयम से मन को वश में रखने की कोशिश करते हैं । जिधर कुन्द रहती है, उधर यथाशक्य आंख उठाकर देखते भी नहीं । बहुत ही आवश्यकता पड़ती है तभी उसका नाम लेते हैं । उसके साथ बहुत शुष्क व्यवहार करते हैं—इतना ही नहीं, निर्दोष होने पर भी उसका तिरस्कार करते हुए सुना है ।

“पूछोगी, तब क्यों इस प्रकार व्याकुल हो रही हूं ? यदि कोई पुरुष यह प्रश्न करता तो उसे इसका अर्थ समझाना कठिन था, किन्तु तुम स्त्री हो ; मेरी बात का मतलब समझ सकती हो । यदि कुन्द, अन्य स्त्रियों की तरह उनकी दृष्टि में सामान्य स्त्री होती,

तो उसकी ओर न देखने के लिए इतना यत्न करते ? तब उसका नाम मुंह से निकालने में इतना डरते क्यों ? कुन्द के विषय में वे स्वयं अपने को अपराधी समझ रहे हैं। कभी-कभी अकारण ही उसे डांट-डपट भी दिया करते हैं ; किन्तु इसका यह मतलब नहीं कि वे उसपर नाराज हैं। उन्हें अपने ही ऊपर क्रोध है। इतने दिनों तक अनन्यव्रता होकर मैंने उनके हृदय के भीतर और बाहर का अनुभव किया है, अतएव उनकी छाया देखकर ही मैं उनके मन का भाव समझ सकती हूँ। वे मुझसे क्या छिपाएंगे ? उदासी के साथ जो उनकी आंखें कभी-कभी किसीकी खांज में इधर-उधर दौड़ा करती है और मेरी आंख पड़ते ही भट उधर से आंखें हटा नीचे देखने लगते हैं, इसका मतलब समझना भी क्या मेरे लिए कठिन है ? किसके कण्ठ का शब्द सुनने के लिए भोजन के समय हाथ में ग्रास लेकर कान दूसरी ओर लगाए रहते हैं, क्या मैं यह नहीं समझती ? हाथ का भात हाथ में ही रह जाता है, कौन चीज किसके साथ खानी चाहिए, इसका ध्यान नहीं रहता, क्यों ? और कुन्द के शब्द सुनते ही जल्दी-जल्दी भोजन क्यों करने लगते हैं, क्या मैं यह नहीं समझ सकती ? वे तो सदैव प्रसन्न रहा करते थे, आजकल इतने उदास क्यों रहते हैं ? कोई बात कहने पर बिना उसे सुने ही उदासीनतापूर्वक जवाब देते हैं, या केवल 'हूँ' कर देते हैं। उस समय जब मैं नाराज होकर कहती हूँ कि 'मैं जल्द मर जाती तो अच्छा होता,' तो वे बिना सुने ही कह देते हैं, 'हूँ' ! यह उदासी कैसी ? बहुत पूछने पर उत्तर देते हैं—'मुकदमे के कारण।' पर मैं अच्छी तरह जानती हूँ कि मुकदमे की वे कभी चिन्ता नहीं करते।

“ एक बात और है। एक दिन पड़ोस की ओरतें हमारे यहां बैठी अनाथा कुन्द के बाल-वैधव्य पर अफसोस कर रही थीं। तुम्हारे भाई भी वहां मौजूद थे। मैंने ओट से देखा कि उसकी दुर्दशा की बात सुनकर उनकी आंखें भर आईं और वे जल्दी से उठकर चले गए।

“ मैंने एक नई नौकरानी रखी है। उसका नाम है कुमुद।

कभी-कभी जब वे कुमुद की जगह भूल से उसे कुन्द कह बैठते हैं, तो उस समय बड़े लज्जित होते हैं। उनकी लज्जा का कारण क्या है ?

“ मैं यह नहीं कहती कि वे मेरा आदर नहीं करते, बल्कि आज-कल पहले से अधिक पूछताछ और आदर करते हैं। मैं इसका कारण जानती हूं। वे अपने को मेरे सम्मुख अपराधी समझते हैं; किन्तु जो हो, इतना मैं जानती हूं कि अब उनके हृदय में मेरा वह स्थान नहीं है। पूछताछ और चीज है, प्यार और चीज है।

“ एक और विचित्र बात है। कलकत्ता में कोई ईश्वरचन्द्र नाम का बड़ा पण्डित है। उसने विधवा-विवाह पर एक किताब लिखी है। जो विधवा-विवाह की व्यवस्था देता है, वह यदि पण्डित है तो मूर्ख कौन होगा ? बैठकखाने में भट्टाचार्य महाशय आए थे तो उस पुस्तक को लेकर खूब वाद-विवाद हुआ। उस दिन विधवा-विवाह का समर्थन करने के कारण ही एक पण्डित को उन्होंने दस रुपये दे दिए।

“ अपनी मनोगत वेदना की बातें लिखकर मैंने तुम्हें कष्ट दिया, पर क्या करूं वहिन, तुमसे भी मन की बात न कहूं तो किससे कहूं ? मेरी पूरी कथा अभी समाप्त नहीं हुई है, किन्तु आज यहीं समाप्त करती हूं। किसीसे यह बात न कहना ; हमारी शपथ, जीजाजी को भी यह पत्र न दिखाना। इस समय तुम यहां आ जातीं तो तुम्हारे साथ रहकर मेरा दुःख कम हो जाता।

तुम्हारी,
सूर्यमुखी ”

पुनश्च :

“ एक बात और है। इस अभागिनी कुन्द को यहां से हटा सकी तो निश्चित हो जाऊंगी। पर हटाऊं कहां ? क्या तुम रख सकती हो ? या तुम भी डरती हो ? ”

कमल ने उत्तर में लिखा :

“ तुम पगली हो गई हो, अन्यथा स्वामी पर से तुम्हारा विश्वास क्यों उठ जाता ? भूलकर भी अविश्वास न करो और यदि किसी

तरह भी अपने आराध्य के ऊपर विश्वास नहीं रख सकतीं तो अच्छा होगा कि तालाब में डूब मरो। जिस स्त्री का स्वामी पर विश्वास न रह जाए, उसका डूब मरना ही अच्छा है।”

थोड़े दिनों बाद नगेन्द्र का स्वभाव धीरे-धीरे बदलने लगा—

निर्मल आकाश में मेघमाला के चिह्न दिखाई पड़े। सूर्यमुखी ने तूफान के चिह्न देख एकान्त में आंखें पोंछनी आरम्भ कीं।

सूर्यमुखी ने मन में स्थिर किया, ‘मैं कमल की बात मानूंगी; स्वामी के ऊपर अविश्वास न करूंगी। उनका हृदय अचल और गम्भीर है। मेरे समझने में ही भूल हुई है। सम्भव है उन्हें कोई रोग हुआ हो।’ इस अनुमान पर उसने बालू की भीत खड़ी की। डाक्टर को बुलाकर कहा, “बाबू की तबियत अच्छी नहीं है; औषधि क्यों नहीं देते?” डाक्टर ने कहा, “बाबू ने तो कुछ कहा नहीं; उन्हें क्या हुआ है, जाकर पूछता हूँ।” तब सूर्यमुखी ने उनसे पूछने को मना कर दिया। डाक्टर ने सोचा—विना पूछे या जाने दवा कैसे होगी? औषधालय में जा एक निर्दोष मिक्सचर तैयार किया और दवा नौकर के हाथ सूर्यमुखी के पास भिजवा दी। सूर्यमुखी दवा खिलाने गई तो नगेन्द्र ने शीशी हाथ में लेकर सामने से जाती बिल्ली पर फेंकी। शीशी चूर हो गई। यह हालत देख सूर्यमुखी ने कहा, ‘दवा भी नहीं खाते हो, तुम्हें क्या कष्ट है, मुझे बताओ।’

नगेन्द्र ने उदासी के साथ कहा, “कष्ट कैसा !”

सूर्यमुखी बोली, “आजकल तुम्हारा चेहरा कैसा हो गया है?” इतना कह उसने शीशा लाकर नगेन्द्र के सामने रख दिया। नगेन्द्र ने उसे भी उठाकर फेंक दिया। शीशा चूर-चूर हो गया। सूर्यमुखी की आंखों से आंसू टपकने लगे। उसकी हालत देख नगेन्द्र की आंखें लाल हो गईं। बाहर बैठक में जाकर एक नौकर को मार बैठे। इस मार का घाव भी कलेजे पर हुआ।

इसके पूर्व नगेन्द्र का स्वभाव बड़ा कोमल था, किन्तु अब तो

बात-बात में क्रोधित हो जाते हैं। क्रोधित ही नहीं—एक दिन रात में भोजन का समय बीत गया, नगेन्द्र अन्तःपुर में नहीं आए। सूर्यमुखी प्रतीक्षा में बैठी रही। बहुत रात बीते नगेन्द्र घर आए। सूर्य देखकर विस्मित हुई। नगेन्द्र का मुंह और आंखें लाल हो रही थीं। मद्यपान के स्पष्ट चिह्न थे। नगेन्द्र कभी शराब नहीं पीते थे। उनकी यह हालत देख सूर्य चिन्तित हो गई।

उस दिन के बाद बराबर ही ऐसा होने लगा। एक दिन सूर्यमुखी ने नगेन्द्र के दोनों पांव पकड़कर प्रार्थना की, “मेरे अनुरोध से इसे छोड़ दो।”

नगेन्द्र—इसमें दोष क्या है ?

सूर्यमुखी—दोष क्या है, यह तो मैं नहीं जानती। जो तुम नहीं जानते, उसे मैं भी नहीं जानती। केवल मेरा अनुरोध है, इसीसे छोड़ दो।

नगेन्द्र—सूर्य ! इस समय मैं मत्त हो रहा हूं। मतवाले को कोई श्रद्धा करता हो तो तुम मुझपर श्रद्धा करो, अन्यथा इसकी भी आवश्यकता नहीं है।

सूर्य कमरे से बाहर चली गई। जिस दिन नगेन्द्र ने नौकर को पीटा था, उसी दिन सूर्यमुखी ने प्रतिज्ञा की थी कि अब से कभी इनके सामने न रोऊंगी।

एक दिन दीवान ने कहला भेजा, “मालकिन जी ! अब ज़मींदारी अधिक दिन न रहेगी। मालिक कुछ देखते नहीं हैं। सदर महल के अमले जो चाहते हैं करते हैं। मालिक के ध्यान न देने के कारण मेरी बात कोई नहीं मानता।” सूर्यमुखी ने कहला भेजा, “जिनकी ज़मींदारी है, वे रखेंगे तो रहेगी। वे न रखना चाहेंगे तो आप क्या कीजिएगा !”

एक दिन तीन-चार हजार प्रजा कचहरी के सामने आकर खड़ी हो गई और फरियाद की कि हुजूर ध्यान न देंगे तो नायबों-गुमास्तों के अत्याचार से हम लोग मर जाएंगे। नगेन्द्र ने हुक्म दिया, “सबको यहां से हटा दो।”

पतन के इन्हीं दिनों में नगेन्द्र के नाम हरदेव घोषाल का पत्र आया, “तुम्हें आजकल क्या हो गया है ? बैठे-बैठे क्या करते रहते हो ? तुम्हारे पत्र भी नहीं आते ; एकाध आते भी हैं तो उनका मतलब ही खब्त रहता है । इतना तो लिखो कि शरीर कैसा है ?” नगेन्द्र ने उत्तर में लिखा, “मेरे उत्तर से नाराज़ न होना, मैं दिन-दिन अधःपतन की ओर अग्रसर हो रहा हूँ ।”

कमल को सूर्य का एक और पत्र मिला है । उसने अंत में लिखा है, “एक बार आओ बहिन कमल ! तुम्हारे सिवा मेरा कोई आत्मीय नहीं है । एक बार आओ ।”

सूर्य के इस पत्र को पाकर कमल का आसन हिल गया । वह स्वामी के पास परामर्श करने गई । श्रीशचन्द्र आफिस में बैठे हिसाब-किताब देख रहे थे । उनके पास ही एक वर्ष का पुत्र सतीश अंग्रेज़ी का अखबार फैलाए बैठा था । पहले उसने उसका भोजन करने की चेष्टा की, पर उसमें सफलता होती न देख उसे बिछाकर बैठ गया । कमल ने स्वामी के निकट जाकर साष्टांग प्रणाम किया, फिर हाथ जोड़कर बोली, “सलाम सरकार !”

श्रीश ने हंसकर पूछा, “क्या कुछ फर्याद करनी है ?”

कमल—हां सरकार ! कुछ चोरी हो गई है ।

श्रीशचन्द्र—कहां, क्या चीज़ चोरी हुई है ?

कमल—गोविन्दपुर में । भैया की सोने की डिबिया में एक कानी कौड़ी थी, उसे ही किसीने चुरा लिया है ।

श्रीशचन्द्र—तुम्हारे भैया की सोने की डिबिया तो सूर्यमुखी हुई, पर यह कानी कौड़ी क्या है ?

कमल—उसकी अवल ।

श्रीशचन्द्र—सूर्य ने उस कानी कौड़ी से तुम्हारे भैया को खरीदा था, पर तुम अपने-आप इतनी अवल रखकर भी अपने भाई... कमल ने हाथ रखकर श्रीश का मुंह बन्द कर दिया । हाथ हटाने पर श्रीश

ने पूछा, “कानी कौड़ी को किसने चुराया है ?”

कमल—यह नहीं जानती पर चुराया है जरूर, नहीं तो ऐसा पत्र क्यों लिखती। लो, इसे पढ़ जाओ। यद्यपि सूर्य ने इसे तुम्हे दिखाने से मना किया है, परन्तु तुमसे कहे बिना कैसे रह सकती हूं ?

श्रीश ने कहा, “जब मुझे दिखाने को मना किया है, तब मेरे लिए उसे पढ़ना ठीक नहीं होगा। इस समय क्या करना होगा, यही बताओ।”

कमल—सूर्यमुखी को बुद्धिदान करना होगा। बुद्धि कौन देगा ? जो कुछ बुद्धि है वह तो सतीश में है। यही सोचकर सूर्य ने सतीश को गोविन्दपुर बुलाया है।

श्रीशचन्द्र—मैं समझ गया कि भौजाई के घर ननद की बुलाहट है। सतीश कमल के बिना कैसे जा सकता है ? जान पड़ता है, सच मुच सूर्य की कानी कौड़ी खो गई है।

कमल—सतीश के साथ हम दोनों भी निमंत्रित हुए हैं।

श्रीशचन्द्र—मैं क्यों ?

कमल—क्या मैं अकेली जाऊंगी ? साथ में मेरा तौलिया लेकर कौन जाएगा ?

श्रीशचन्द्र—यह सूर्य का अन्याय है। यदि तौलिया ले चलने के लिए ही दामाद की आवश्यकता है तो मैं दो-चार दिन के लिए एक दूसरा दामाद ठीक कर दूं ?

सुनकर कमल को क्रोध आ गया। उसने श्रीश से लिखने का कागज छीन लिया। श्रीश ने कहा, “यह छेड़खानी क्यों कर रहे हो ?”

कमल ने बनावटी क्रोध दिखाकर कहा, “हमारा मन।” श्रीश ने भी बनावटी क्रोध से कहा, “मेरा भी मन।” कमल और चिढ़ गई। उसने दांत से अपने अधर दबाकर श्रीश को मुट्ठी तानकर दिखाई। इसपर श्रीश ने कमल की वेणी खोल दी। कमल का बनावटी क्रोध और बढ़ गया। उसने दवात की रोशनाई पीकदान में उंडेल दी। श्रीश ने कमल के दोनों हाथ बांधकर उसे चूम लिया। क्रोध में अधीर हो कमल ने भी शीघ्र ही प्रत्युत्तर दिया। या

अद्भुत संग्राम देख सतीश बड़ा प्रसन्न हुआ। इस संग्राम की लूट-पाट में अपना कर वसूल करने के लिए वह कमल के घुटनों को पकड़ खिलखिलाने लगा। कमल ने सतीश को गोद में उठा उसका मुंह चूमा। फिर श्रोश ने कमल की गोद से सतीश को लेकर उसे चूम लिया।

श्रीश ने कहा, “तो क्या तुम सचमुच गोविन्दपुर जा रही हो ? मैं अकेले ही रहूंगा ?”

कमल—अकेले रहने को कौन कहता है ? तुम्हें भी चलना होगा। जाओ, जल्दी आफिस से लौट आओ।

श्रीश—मैं कैसे जाऊंगा, व्यापार का समय है !

कमल—तो क्या आज्ञा है ? तुम न जाओ तो मेरे ही जाने का प्रबन्ध कर दो।

श्रीश—वहां कितने दिन रहोगी ?

कमल—जब तुम नहीं जा रहे हो तो भला मैं कितने दिन ठहर सकूंगी, सो तुम स्वयं समझ सकते हो।

श्रीश ने कमल को गोविन्दपुर भेज दिया, किन्तु इस बार व्यापार में उन्हें ज्यादा लाभ नहीं हुआ।

कमल का प्रसन्न वदनमण्डल देखकर दुःखिनी सूर्य की आंखों के आंसू भी सूख गए। कमल सूर्य के बालों को सुलझाने बैठ गई। बहुत दिनों से सूर्यमुखी ने बाल ठीक नहीं किए थे, क्योंकि स्वामी की उदासीनता के दुःख में उसे यह सब अच्छा नहीं लगता था। कमल ने वेणी बांधकर कहा, “दो फूल भी लगा देती हूं।” सूर्य ने उसके गाल में चपत लगाकर कहा, “दुर पगली !” पर कमल ने फूल गूँथकर शपथ धरा दी कि वह इन्हें निकालकर फेंक न सके। एक ओर स्वयं ऐसा किया, दूसरी ओर किसीके आने पर हंसी करती बोली, “देखो ज़रा इस बूढ़ी को, इस अवस्था में भी शृंगार की इतनी लालसा है !”

कमल के मुख की प्रसन्नता नगेन्द्र के दुःखाच्छन्न मुखमण्डल को देखकर भी विकृत नहीं हुई। नगेन्द्र के आने पर उसने प्रणाम किया। नगेन्द्र बोले, “अरे ! तू यहां कैसे ?” कमल ने सिर नीचा किए सतीश की ओर संकेत करके कहा, “यही घसीट लाया है।” नगेन्द्र बोले, ‘बड़ा पाजी है, मारो इस दुष्ट को।’ और गोद में उठा सतीश का मुह चूम लिया। बच्चे ने भी कृतज्ञता व्यक्त करने के लिए उनके मुंह पर लार गिरा दी और मूँछों को मरोड़ने में भी श्रुति न की।

थोड़ी देर बाद कुन्द के पास पहुंचकर कमल ने पूछा, “क्यों री ! अच्छी तो है ?” एकाएक कमल को देख कुन्द कुछ देर अवाक् रही, फिर बोली, “अच्छी ही हूं।”

“‘अच्छी हूं दीदी’ इस तरह कह। मुझे दीदी कहना पड़ेगा, नहीं कहेगी तो सोते ही तेरे बालों में आग लगा दूंगी।” कमल ने कहा।

कुन्द कमल के अनुरोध की उपेक्षा न कर सकी और त्रिवश हो उसे ‘दीदी’ कहना आरंभ किया। जब कुन्द कलकत्ता में थी तो कमल को कुछ नहीं कहती थी, अधिक बातचीत भी न करती थी किन्तु अनुभव से जान गई थी कि कमल का स्वभाव प्रेमपूर्ण है, अतएव मन ही मन वह तभी से कमल को प्यार करने लगी थी। कई वर्षों से भेंट न होने पर जो प्रेम मुर्झा चला था वह धीरे-धीरे फिर बढ़ने लगा।

क्रमशः वह प्रेम गहरा हो गया। इधर कमल के जाने की तिथि भी आ पहुंची। यह देख सूर्य बोली, “दो-चार दिन और ठहर जाओ। तुमसे अपने मन की व्यथा कहकर चित्त को कुछ शान्ति मिलती है। तुम्हारे चले जाने पर बचूंगी या नहीं, यह भी ठीक नहीं कह सकती।”

कमल ने कहा, “तुम्हारा काम समाप्त करके ही जाऊंगी।” सूर्य ने पूछा, “मेरा कौन काम ?”

कमल ने सूर्य को सुनाकर कहा, “तेरा श्राद्ध,” पर मन से कहा, ‘तुम्हारा कण्ठकोट्टार।’

उधर कुन्द कमल के जाने की तिथि आई देख अपने कमरे में जाकर रोने लगी। कमल धीरे-धीरे उसके पास पहुंची। कुन्द तकिये पर सिर रखकर रो रही थी। कमल बैठकर उसके बाल संवारने लगी। बाल संवारने के बाद कुन्द का सिर अपनी गोद में रख, कमल ने अपने आंचल से उसके आंसू पोंछ दिए। फिर पूछा, “कुन्द ! तू रोती क्यों थी ?”

कुन्द ने पूछा, “तुम जाती क्यों हो ?”

कमल के होंठों पर मुस्कराहट दिखाई दी; आंखों से दो-चार बूंद आंसू भी टपक पड़े। धूप में वर्षा हुई। कमल ने पूछा, “तो इसमें रोने का क्या काम है ?”

कुन्द—तुम मुझसे प्रेम करती हो, इसीलिए।

कमल—क्यों, क्या और लोग तुझे प्यार नहीं करते ?

कुन्द ने कुछ उत्तर नहीं दिया।

कमल—बोल, तुझे कौन प्यार नहीं करता ? क्या सूर्य ?

इस बार भी कुन्द चुप रही।

कमल—क्या भैया प्यार नहीं करते ?

इसका भी कुन्द ने कुछ जवाब न दिया।

कमल—यदि तू मुझे प्यार करती है और मेरे जाने से दुःखी है तो मेरे साथ चल न ?

अब कुन्द कुछ न बोली। कमल ने फिर पूछा, “बोल, चलेगी ?”

कुन्द ने सिर हिलाकर कहा, “नहीं।”

कमल का प्रसन्न मुख गम्भीर हो गया। उसने स्नेहपूर्वक कुन्द का सिर अपनी छाती से लगा लिया और उसकी ठुड्डी पकड़कर पूछा, “कुन्द ! सच बताएगी ?”

कुन्द ने विस्मयपूर्वक कहा, “क्या ?”

कमल ने कहा, “जो मैं पूछूंगी। मैं तेरी वहन हूं; मुझसे छिपा मत। मैं किसीसे कुछ न कहूंगी।” मन में कहा, ‘केवल राजमंत्री श्रीश बाबू को छोड़।’

कुन्द—क्या पूछती हो ?

कमल—तू भैया को प्यार करती है या नहीं ?

कुन्द इसका क्या जवाब देती ? इसका कोई उत्तर कभी किसी-ने दिया है ? वह कमल की गोद में मुंह छिपाकर रोने लगी ।

कमल—जान गई । तू मरने पर लगी है । मरना हो मर, तेरे मरने से किसीकी कुछ हानि न होगी ; किन्तु अपने साथ औरों को लेकर न डूब ।

कुन्द अपना सिर उठा थोड़ी देर तक स्थिर, पर सूनी आंखों से कमल के मुंह की ओर देखती रही । कमल बोली, “जलमुंही ! तू न जाने कितनों के प्राण लेकर मरेगी !”

कमल की बात भली भांति पूरी भी न हो पाई थी कि कुन्द फिर उसकी गोद में लुढ़क पड़ी और फूट-फूटकर रोने लगी । कमल के आंसुओं ने भी उसके बाल गीले कर दिए । प्रेम के गूढ़ तत्त्व से कमल भली-भांति परिचित थी । उसके हृदय के गूढ़ प्रदेश में कोई बैठकर देखता तो उसे पता लगता कि वह कुन्द के दुःख से दुःखी और सुख से सुखी हुई है । बहुत देर बाद कुन्द की आंखें पोंछ कमल ने कहा, “कुन्द !”

कुन्द ने फिर सिर उठाकर कमल की ओर देखा ।

कमल—मेरे साथ चल ।

कुन्द की आंखें फिर भर आईं । कमल ने कहा, “तुम्हारे यहां से हटे बिना काम नहीं चलेगा कुन्द ! देखती हो कि सोने की गृहस्थी मिट्टी हो रही है ।”

कुन्द रोने लगी । कमल ने कहा, “अच्छी तरह सोचकर उत्तर दो, चलोगी ?”

बहुत देर बाद आंसू पोंछ कुन्द उठ बैठी । बोली, “चलूंगी ।”

इतनी देर क्यों लगी, कमल इसे समझ गई । मन ही मन सोचा कि कुन्द ने दूसरे के मंगल के लिए अपने प्राण का बलिदान किया और नगेन्द्र तथा सूर्यमुखी के कल्याण के लिए नगेन्द्र को भूल जाने का वादा किया है, इसीसे इतनी देर लगी । पर अपना मंगल ? कमल समझ गई कि कुन्द के हृदय में अपने मंगल की इच्छा नहीं है ।

इसी समय वैष्णवी आ पहुंची। आज सूर्यमुखी भी वहां मौजूद थी। उसने कमल को बुला भेजा। कमल और कुन्द एकसाथ आईं। वैष्णवी ने गीत प्रारम्भ किया।

गीत शुरू होते ही कमल ने क्रोधपूर्वक कहा, “वैष्णवी ! तेरा मुंह काला हो; तू मर क्यों नहीं जाती ? क्या दूसरा गीत नहीं जानती ?”

वैष्णवी ने पूछा, “क्यों ?”

कमल का क्रोध और बढ़ा। बोली, “क्यों ? ज़रा एक कांटेदार छड़ी दे तो इसे दिखा दूं कि कांटों की चोट में कितना आनन्द मिलता है।”

सूर्यमुखी ने मीठे स्वर में कहा, “बहिन ! ये गीत हम लोगों के सुनने लायक नहीं हैं। गृहस्थों के घर लायक कोई अच्छा गीत गाओ।”

वैष्णवी दूसरा गीत गाने लगी। कमल को वह गीत भी अच्छा न लगा। वह चिढ़कर उठ गई। सूर्यमुखी भी चली गई। कुन्द वहीं रही। उसका चित्त आज बड़ा उदास और दुःखी था; भावी आशंकाओं की चिन्ता में वह डूबी हुई मूर्तिवत् बैठी रही। बहुत लोगों के चले जाने पर वैष्णवी ने गीत बन्द कर दिया। और स्त्रियां भी एक-एक करके चली गईं। कुन्द ज्यों की त्यों बैठी रही, जैसे उसके पैरों में उठने की शक्ति ही न हो। एकान्त देख वैष्णवी ने उससे अनेक बातें कहीं। कुछ उसके कानों में पहुंची, कुछ नहीं। सूर्य दूर बैठी यह सब देख रही थी। उसने कमल को बुलाकर भी दिखाया। कमल ने कहा, “हर्ज क्या है ? कोई पुरुष तो है नहीं।”

सूर्यमुखी—यह भी किसे ठीक मालूम है कि वह स्त्री है या पुरुष ?

विस्मित हो कमल ने पूछा, “हैं ! यह क्या कहती हो ?”

सूर्यमुखी—मुझे तो यह कोई छद्मवेशी पुरुष जान पड़ता है। इसका पता लगाना कठिन नहीं। परन्तु कुन्द क्या पापिष्ठा है ?

“मैं अभी कांटेदार छड़ी लाती हूं, वैष्णवी को दो-चार कांटों का नाश्ता करा दूं।” यह कहकर कमल चली गई। परन्तु रास्ते

में सतीश को पाकर सब भूल गई ।

उधर सूर्यमुखी ने हीरा दासी को बुलवाया । इस घर में काम करनेवाली अच्छे घर की दासियों में हीरा प्रधान थी । वह कायस्थ-कन्या थी । लगभग बीस वर्ष की होगी । गोविन्दपुर में प्रायः सब लोग जानते थे कि वह बाल-विधवा है । किसीको उसके स्वामी का कुछ हाल नहीं मालूम, किन्तु हीरा के चरित्र में कभी किसीने कलंक की कोई बात नहीं देखी । इतना अवश्य था कि वह बड़ी मुखरा थी और सधवा की भांति ठाट-बाट से रहती थी । अत्यंत सुन्दरी थी । वह कभी एकान्त में बैठकर गीत गाती, कभी रसोई बनाने-वालियों को धमकाती, कभी दो में भगडा लगाकर तमाशा देखती । उसमें अनेक अवगुण भी थे जिनका पता आगे चलकर मिलेगा । इत्र चुरा लेने में वह प्रवीण थी ।

सूर्यमुखी ने हीरा को बुलाकर पूछा, “इस वैष्णवी को पहचानती है ? जाकर पता तो लगा, कौन है, कहां रहती है और कुन्द के साथ इसका इतना मेलजोल क्यों है । अगर ठीक पता लगा लेगी तो एक अच्छी बनारसी साड़ी तुम्हें दूंगी । किन्तु सावधानी से काम करना । वैष्णवी या किसी दूसरे को पता न लगे ।”

इसी समय कमल भी वहां आ पहुंची । सूर्य ने उससे सब बातें कह दीं । वह बोली, “हीरा ! हो सके तो दो-चार कांटों का स्वाद भी उसे चखाती आना ।”

हीरा—किन्तु केवल साड़ी से ही काम न चलेगा ।

सूर्यमुखी—तब क्या लेगी ?

कमल—एक दूल्हे की जरूरत है, इसका ब्याह करवा दा ।

सूर्यमुखी—यही सही, यह पसन्द कर ले ।

हीरा—मेरे लायक वर तो एक ही है ।

सूर्यमुखी—वह कौन ?

हीरा—यम ।

उसी दिन की बात है। उद्यान के सरोवर के किनारे कुन्द बैठी थी। बड़ा सरोवर है। सरोवर के पीछेवाली वाटिका में सफेद पत्थर का बना लतामण्डप है। मण्डप के सामने सरोवर में उतरने के लिए सीढ़ियाँ हैं। इन सीढ़ियों के दोनों ओर दो बहुत पुराने मौलश्री के घने पेड़ हैं। कुन्द उन्हींमें से एक पेड़ के नीचे सीढ़ी के अंधकार में अकेली बैठी सरोवर में पड़ती नक्षत्रों और आकाश की छाया देख रही है। अंधेरे में भी वाटिका के विकसित लाल फूल स्पष्ट दीख पड़ते हैं। सरोवर के और तीन ओर आम, कटहल, जामुन, लीची इत्यादि के वृक्ष कतार में लगे हैं और अंधेरे में एक दीवार जैसे लगते हैं। कभी-कभी उनपर बैठा कोई पक्षी अकस्मात् वहाँ की नीरवता भंग कर देता है। शीतल, मंद वायु सरोवर के कमलों को हिलाती हुई मौलश्री के पत्तों में मर्मर शब्द उत्पन्न करती है। बकुल के फूल चुपचाप कुन्द के ऊपर गिर रहे हैं। मल्लिका, जूही और कामिनी की सुगन्ध लेकर समीर आता है और कुन्द के पास बिखेर जाता है। अंधकार में जुगनू सरोवर पर उड़ रहे हैं, चमकते हैं और फिर बुझ जाते हैं। कभी-कभी मेढक और सियार की ध्वनि भी सुनाई पड़ जाती है। दो-एक मेघ आकाश में भूले पथिक की नाई, डधर-उधर भटक रहे हैं ; और मानो मानसिक वेदना से व्यथित होकर कभी-कभी कोई तारे पृथ्वी पर गिर रहे हैं।

कुन्द अपनी मानसिक व्यथा के कारण चिन्ता-सागर में डूबी हुई है ; सोचती है, 'मेरे परिवार के सब मर चुके... माँ मरी, भाई मरा, पिता मरे, तब मैं क्यों नहीं मरी ? यदि नहीं मर सकी तो यहाँ क्यों आई ? क्या मनुष्य मरकर नक्षत्र होता है ?' पिता की मृत्युवाली रात में कुन्द ने जो स्वप्न देखा था, उसे वह भूल गई थी। पर कभी-कभी उसकी एक झलक दिखाई पड़ जाती। इस समय भी वही हुआ। केवल इतना याद पड़ा कि उसने कभी माँ को स्वप्न में देखा था और माँ ने उससे कुछ कहा था। फिर सोचने लगी, 'यदि मनुष्य मरने पर नक्षत्र होता है तो मेरे माता-पिता भी नक्षत्र हुए होंगे। तो वे इन नक्षत्रों में कौन हैं ? कोई हों, मुझे वहाँ से देख तो रहे होंगे। मैं भी मरकर उन तक पहुँच

सकती हूं। पर मरूं कैसे ? जल में डूबकर ? अच्छा तो है ! मरकर नक्षत्र बनूंगी। ठीक होगा। देख पाऊंगी ? उनकी...। किनकी ? क्या उनका नाम नहीं ले सकती ? क्यों नहीं... इस समय तो यहां कोई नहीं है। न न नग... नगेन्द्र ! नगेन्द्र, नगेन्द्र, नगेन्द्र, नगेन्द्र, मेरे नगेन्द्र ! मेरे प्रकाश ! मेरे नगेन्द्र ! मेरे ? पर मैं कौन हूं ? हां, सूर्य के साथ न होकर उनका विवाह मेरे साथ होता—दुर, पगली ! तेरे लिए डूब ही मरना अच्छा। किन्तु मान लो आज डूब मरी पर कल तो उतरा जाऊंगी। नगेन्द्र, नगेन्द्र, नगेन्द्र—नगेन्द्र क्या करेंगे ? डूब मरते नहीं बनेगा। फूलकर उतरा जाऊंगी, राक्षसी जैसी दीख पड़ूंगी। तब विष खाकर मर सकती हूं। पर विष पाऊंगी कहाँ ? कौन मुझे देगा ? मान लो किसीने ला दिया, तब क्या मर सकूंगी ? हां, मर सकती हूं, पर अभी, आज नहीं। एक बार अपनी साध पूरी कर लूं। वे मुझे प्यार करते हैं। कमल ने उस दिन बात ही बात में कह नहीं दिया था ? अच्छा, क्या यह सत्य है ? किन्तु कमल क्या जानेगी ? मैं पगली उनसे आज तक इतना भी पूछ नहीं सकी ? प्यार करते हैं ? कैसे प्यार करते हैं ? रूप के कारण या गुण देखकर ? रूप ? देखूं कैसा रूप है ; उहं, जाने दो। जो बात है ही नहीं, उसे सोचकर क्या होगा ? मुझसे अधिक सुन्दर सूर्य है। मुझसे अधिक सुन्दर कमल है। मुक्ता सुन्दरी है, चन्द्र सुन्दरी है, प्रमदा सुन्दरी है, हीरा दासी भी मेरी अपेक्षा अधिक सुन्दरी है। रूप की बात हटाओ। पर गुण ही क्या हैं ? कुछ तो नहीं। जो हो, पर मरते नहीं बनेगा। सब व्यर्थ है। पर व्यर्थ को सत्य समझ उपासना-चिन्ता करूंगी, कलकत्ता न जाऊंगी। वहां चले जाने पर वे दिखाई न देंगे—ना, कलकत्ता न जा सकूंगी, न जा सकूंगी। पर न जाऊंगी तो क्या करूंगी ? कमल के कथनानुसार, जिसने मेरा इतना उपकार किया, उसका ही सर्वनाश कर रही हूं। जान पड़ता है, सूर्यमुखी को भी कुछ सन्देह हो गया है। अब क्या करूं ? सच या झूठ, वहां जाना पड़ेगा पर जा नहीं सकूंगी। इसीसे डूब मरना अच्छा है। अवश्य मरूंगी। पिता ! क्या तुम मुझे डूब मरने के लिए ही छोड़ गए थे ?'

कुन्द आंचल में मुंह छिपाकर रोने लगी। अंधेरे घर में जैसे एकाएक दीपक जल उठे, उसी प्रकार अकस्मात् कुन्द को वह स्वप्न पूरा रमण हो आया। कुन्द बिजली की गति से उठ खड़ी हुई। सोचने लगी, 'हाय ! मैं उन बातों को क्यों भूल गई ? मां ने कारण-वश मुझे दर्शन दिया था, उसने मेरे अदृष्ट की बात जानकर मुझे नक्षत्र लोक में चले जाने का आदेश दिया था। मैंने उसकी बात क्यों न मानी ? वहां क्यों न गई ? उसी समय क्यों न मर गई और अब देर क्यों कर रही हूं ? अभी मरूंगी।' मरने का निश्चय कर कुन्द धीरे-धीरे सीढ़ियों से नीचे उतरने लगी। पग-पग पर उसका हृदय कांपने लगा, पर मां के आदेश की पूर्ति के लिए बार-बार मन को दृढ़ करने लगी। इसी समय पीछे से किसीने उसे छू दिया, और सुरीला शब्द हुआ, "कुन्द !" कुन्द कांप उठी और पीछे फिरकर देखा—नगेन्द्र हैं।

उस दिन कुन्द मर न सकी।

नगेन्द्र ! क्या यही तुम्हारी सच्चरित्रता है ? क्या यही तुम्हारी शिक्षा का आदर्श है ? क्या यही पत्नी सूर्यमुखी के प्रणय का प्रतिफल है ? छिः ! तुम चोर हो—चोर से भी नीच। चोर सूर्य का क्या करता ? गहने-कपड़े चुरा ले जाता, पर तुम तो उस पतिप्राणा के प्राण लेने आए हो। सूर्य चोर का कभी कोई उपकार नहीं करती, कोई सेवा नहीं करती, तब भी धन चुराने के कारण वह संसार में अनादृत और दण्ड का पात्र होता है, पर तुम्हें तो उसने अपना सर्वस्व सौंप दिया है, फिर भी तुम चोर से अधिक चोरी करने आए हो। नगेन्द्र ! तुम्हारा मर जाना ही अच्छा है। बल हो तो डूब मरो।

और कुन्द, तुम चोर के स्पर्श से कम्पित क्यों हुई ? चोर के शब्द से तुम्हें रोमांच क्यों हुआ ? कुन्द ! सरोवर का जल स्वच्छ है, उसमें डूब मरो।

चोर ने पूछा, "कुन्द ! तू कलकत्ता जाएगी ?"

कुन्द ने आंसू पोंछ लिए ; कुछ उत्तर नहीं दिया ।

चोर ने फिर पूछा, “कुन्द, क्या तू अपनी इच्छा से जा रही है ?”

कुन्द ने इस बार भी कुछ उत्तर न देकर आंसू पोंछे ।

फिर प्रश्न हुआ, “कुन्द ! रोती क्यों है ?”

इस बार बांध टूट गया । कुन्द अधीर होकर रो पड़ी । नगेन्द्र कहने लगे, “कुन्द ! मैंने बड़े कष्ट से इतने दिन बिताए हैं, पर अब अधिक मेरे लिए असह्य है । बता नहीं सकता कि मैं कितनी वेदना के साथ जी रहा हूँ । इतने दिनों तक निरन्तर मन के साथ युद्ध कर मैं क्षत-विक्षत हो गया हूँ । अब पिछला नगेन्द्र नहीं रह गया हूँ ; एकदम परिवर्तन हो गया है । एक उपाय है । तुम्हारी इच्छा होते ही तुम्हारे साथ विवाह करूंगा । बोलो, क्या कहती हो ?”

इस बार कुन्द के मुंह से आवाज निकली । आंतरिक वेदनापूर्ण स्वर में उसने कहा, “नहीं ।”

नगेन्द्र ने पूछा, “क्यों कुन्द, विधवा-विवाह क्या शास्त्र-विरुद्ध है ?”

बड़े कष्ट से कुन्द बोली, “नहीं ।”

नगेन्द्र ने देखा—स्वच्छ सरोवर है, शीतल जल है, सुगंधित पवन है ; सरोवर के अन्तस्तल में तारे कांप रहे हैं । सोचा, ‘इसके भीतर सो रहना कैसा रहेगा ?’

विधवा-विवाह के शास्त्र में रहने के कारण ही नहीं तो फिर और किस आशा से कुन्द डूब मरने में हिचकिचाई ?

वैष्णवी बागवाले बंगले में आकर देवेन्द्र बाबू के रूप में बदल गई । गुड़गुड़ी में चांदी की सिगड़ी लगी थी । उन्होंने कलकल-नादिनी उस गुड़गुड़ी के चुम्बन के लिए मुंह बढ़ा दिया । उसके सिर पर सुहाग की आग जल उठी । पास ही स्फटिक पात्र में सुवर्णांगी

एकशाकुमारी चमक रही हैं। हुक्का ने कहा, 'छिः ! मुंह बनाए क्या बैठे हो !' एकशाकुमारी ने कहा, 'अजी देखो ! मैं कैसी सुन्दर हूँ ! पहले मेरी सेवा का प्रसाद ग्रहण करो। कृतकृत्य हो जाओगे।'

देवेन्द्र ने पहले गुड़गुड़ी का मुख-चुम्बन किया। उससे प्रेम का धुआँ उठा, फिर एकशाकुमारी को भी उदरस्थ किया। वह धीरे-धीरे सिर पर चढ़ने लगी। इसी समय सुरेन्द्र ने आकर कुशल-प्रश्न के पश्चात् पूछा, "आज तुम कहाँ गए थे ?"

देवेन्द्र—इतनी जल्दी यह समाचार तुम्हारे पास पहुँच गया ?

सुरेन्द्र—देवेन्द्र ! तुम भूलते हो। तुम समझते हो, दूसरे किसी-को उसकी खबर नहीं है, किन्तु तुम्हारे कुकर्मों की आलोचना घर-घर हो रही है।

देवेन्द्र—मैं छिपाकर यह काम करना भी नहीं चाहता। भला किससे छिपाऊंगा ?

सुरेन्द्र—यह भी तो कोई अच्छी बात नहीं है। यदि तुममें ज़रा भी शर्म होती तो इस तरह क्या गांव-गांव घूमकर औरतों को देखते फिरते ?

देवेन्द्र—किन्तु वैष्णवी का कैसा सुन्दर रूप धारण किया था ; उसकी सफाई को तो न कहोगे ? भैया ! तुम देखते तो कहते।

सुरेन्द्र—मैं देख पाता तो दो ही चार चाबुकों में तुम्हारी सब चालाकी निकाल देता।

देवेन्द्र एक पात्र में शराब ढालने जा रहे थे। उनके हाथ से पात्र छीनकर सुरेन्द्र ने कहा, "ज़रा ठहर जाओ; अभी तुम होश में हो। मेरी दो-चार बातें सुन लो, फिर चाहे जो करना।"

देवेन्द्र—कहिए भैया, क्या बात है ? आज बड़ी गर्मी देखता हूँ। हेम ने कुछ कहा तो नहीं ?

देवेन्द्र की बात पर ध्यान न देकर सुरेन्द्र बोले, "किसका सर्व-नाश करने के लिए यह वेश धारण किया था ?"

देवेन्द्र—तुम्हें याद होगा कि मास्टर का विवाह एक परम-सुन्दरी कन्या से हुआ था। वह देवकन्या विधवा होकर आजकल नगेन्द्र के यहाँ साधारण काम-काज करती है, उसे ही देखने गया

था ।

सुरेन्द्र—इतने से संतोष नहीं हुआ कि उस अनाथा बालिका का सर्वनाश करने गए थे ? तुम्हारा पाप और अत्याचार इतना बढ़ गया है कि देखते हैं, हमें भी तुम्हारा साथ छोड़ना पड़ेगा ।

सुरेन्द्र ने ये बातें इतने स्थिर एवं गम्भीर स्वर में कहीं कि देवेन्द्र का सारा नशा तीन-तेरह हो गया । गंभीरतापूर्वक बोले, “भैया ! तुम मुझपर क्रोध न करो । मेरा मन मेरे वश में नहीं है । मैं सब कुछ छोड़ सकता हूँ, पर उस स्त्री की आशा का त्याग करना मेरे लिए असंभव है । जिस दिन पहली बार मैंने उसे ताराचरण के घर देखा था, उसी दिन से उसके लिए पागल हो रहा हूँ । मेरी आंखों में उसका सौंदर्य बस गया है । जब किसी तरह सफलता प्राप्त न हुई तो यह रूप धारण किया । डरो मत भैया ! वह बालिका बड़ी सती-साध्वी है ।”

सुरेन्द्र—तो फिर वहां जाते क्यों हो ?

देवेन्द्र—केवल उसे देखने की इच्छा से । उसे देखकर, उससे बात करके तथा गाना सुनाकर जो शांति मिलती है वह अनुभव से ही समझी जा सकती है । तुम मेरे एकमात्र सुहृद् हो । अपनी अनेक खराब आदतें छोड़ सकता हूँ पर तुम्हें नहीं छोड़ सकता । हां, कुन्द इसका अपवाद है । तुम्हें भी छोड़ना पड़े तो छोड़ सकता हूँ पर उसकी आशा नहीं छोड़ सकता ।

“तो तुमसे यही अंतिम भेंट है ।” कहकर उदास हो सुरेन्द्र चले गए । देवेन्द्र बड़ी देर तक क्षुब्ध रहे, फिर अपने-आप बोले, ‘हटाओ इन भ्रंशों को । इस संसार में कौन किसका होता है ?’ फिर गिलास में ब्रांडी भरी और गले के नीचे उतार गए । चित्त प्रसन्न हो गया । पलंग पर पड़े-पड़े गाने लगे ।

खिड़की की ओर कुछ आहट हुई । कोई झिलमिला उठाकर देख रहा था, फिर गिरा दी । देवेन्द्र कदाचित् किसीकी प्रतीक्षा कर रहे थे । आवाज़ दी, “कौन ?” कुछ उत्तर न पाकर सिर उठाकर देखा—कोई स्त्री भागी जा रही है । देवेन्द्र बाहर आ उसी तरफ दौड़े । स्त्री भागा जा सकती थी किन्तु जान पड़ता है स्वयं ऐसा

नहीं चाहती थी। देवेन्द्र ने उसे पकड़ लिया पर अंधेरे के कारण पहचान न सके। नशा चढ़ गया था। उसे घर के भीतर पकड़ ले जाकर और प्रकाश में उसकी ओर देखकर पूछा, “किस पेड़ से आई हो? किसकी स्त्री हो? अच्छा, आज जाओ। अमावस्या को बकरे की बलि चढ़ाऊंगा। चाहो तो थोड़ी ब्रांडी पीती जाओ।” इतना कह उसके हाथ में ब्रांडी से भरा गिलास थमा दिया।

औरत ने उसे लेकर पृथ्वी पर रख दिया। तब मतवाला दीपक उसके मुंह के पास ले गया और अच्छी तरह देखकर बोला, “तुम कौन हो जी? जान पड़ता है तुम्हें कहीं देखा है।”

स्त्री ने अपने को छिपाना व्यर्थ समझ कहा, “मैं हीरा हूं।”

“हुर्रे! थी चियर्स फार हीरा?” कहकर मतवाला नाचने लगा। फिर हीरा को प्रणाम कर उसकी स्तुति करता रहा।

हीरा दिन में ही वैष्णवी के पीछे-पीछे आकर जान चुकी थी कि देवेन्द्र ही वैष्णवी है, किन्तु यह मालूम न हो सका था कि क्यों इस प्रकार दत्तगृह में वेश बदलकर आते-जाते हैं। इसीलिए इस समय छिपकर आई थी और उसने सुरेन्द्र तथा देवेन्द्र की सब बातें सुन ली थीं। अपने कार्य में सफल हो लौटी जा रही थी कि आहट पा देवेन्द्र पीछे दौड़ पड़े।

देवेन्द्र ने ब्रांडी-भरा गिलास फिर उसे दिया। उसने कहा, “आप ही पीजिए।” तुरन्त देवेन्द्र ने गिलास खाली कर दिया। अब जब नशा बढ़ गया, तब वे पड़ गए। अबसर देख हीरा नौ दो ग्यारह हुई।

दूसरे दिन सुबह हीरा ने सब बातें सूर्यमुखी को बता दीं। देवेन्द्र कुन्द के लिए वैष्णवी का वेश धारण कर आते हैं, पर इसमें कुन्द का क्या दोष है? कुन्द की इच्छा से तो वे आते नहीं—यह बात न हीरा ने कही, न सूर्यमुखी ने सोची। सूर्य ने उस दिन वैष्णवी के साथ कुन्द को धीरे-धीरे बातें करते देखा था इसलिए उसने उसे ही दोषी ठहराया। वह क्रोध से पागल हो गई; कुन्द को बुलवाकर कहा, “वैष्णवी कौन है, हमें मालूम हो गया है। यह भी पता चल गया कि तू कैसी है। मैं ऐसी स्त्री को अपने घर में नहीं रख

सकता, तू यहां से चली जा, नहीं तो भाड़ू मारकर निकाल दी जाएगी।”

कुन्द कांपने लगी। कमल ने देखा कि वह गिरना ही चाहती है। वह उसे पकड़कर शयनागार में ले गई और धीरज देकर कहा, “कुन्द ! सूर्य चाहे जो कहे, मुझे उसकी बातों पर विश्वास नहीं है।”

आधी रात में, जब घर के सब लोग सो रहे थे, कुन्द किवाड़ खोल बाहर निकली। बस, जो वस्त्र पहने थी वही उसके पास था, और कुछ नहीं। उस गम्भीर निशीथ में केवल एक वस्त्र लेकर वह अनाथिनी बालिका संसार-सागर में अकेली कूद पड़ी।

रात बहुत अंधेरी है। दो-एक बादल भी आकाश में दौड़ रहे हैं। ऐसे समय राह पहचानना कठिन है। कौन बताएगा कि मार्ग किधर है। फिर कुन्द तो आज तक कभी दत्तगृह से बाहर भी नहीं हुई थी। कहां जाने के लिए कौन मार्ग पकड़ना चाहिए, यह भी नहीं जानती थी। तब आश्रयहीन अनाथिनी कुन्द कहां जाएगी ?

गगनचुम्बी अट्टालिका अंधेरे को और घना बना रही थी। उसी सघन अंधकार में कुन्द इधर-उधर घूमने लगी। मन में आया, ‘एक बार खिड़की से नगेन्द्र के कमरे का प्रकाश देख लेती तो उस प्रकाश से ही अपनी आंखें ठण्डी कर चली जाती।’

कुन्द नगेन्द्र का शयनागार पहचानती थी। पहुंचकर देखा कि खिड़की से कुछ प्रकाश आ रहा है, खिड़की के अगले किवाड़ खुले हैं, पर शीशे लगे हैं। उस सघन अन्धकार में तीन खिड़कियों से थोड़ा-थोड़ा प्रकाश फैल रहा है। कुन्द मुग्ध नेत्रों से उस प्रकाश को देखने लगी। उसे छोड़कर वह नहीं जा सकी। शयनागार के सामने लगी भाऊ की भण्डियों की आड़ में बैठकर खिड़की से आते आलोक को देखती ही रह गई।

रात अंधेरी है। वक्षों पर खद्योत-राशि रत्नमाला की भांति

सुशोभित हो रही है। आकाश के बादलों में भी कलह है। तारे कभी बादलों में छिप जाते, कभी निकल आते हैं। हवा के धक्कों से कभी-कभी खिड़कियों के पल्ले दीवार से टकरा जाते हैं। नारियल के वृक्षों की फुनगियां हिल रही हैं। ताड़ के पत्तों की खड़खड़ाहट भी सुनाई पड़ती है, परन्तु कुन्द का ध्यान इन बातों की ओर नहीं है। उसकी दृष्टि पतंगों से आच्छादित उस आलोक पर ही लगी है।

कुछ देर बाद एक खिड़की का शीशा खुला। एक मानव-मूर्ति दीख पड़ी—नगेन्द्र थे। नगेन्द्र ! यदि तुम भाऊ के अंधकार में छिपी हुई उस अधखिली कुन्द कली को देख सकते ! तुम्हें देखकर उसका हृदय जो तेजी से धड़कने लगा है, उस धड़कन को सुन पाते ? काश तुम जानते कि तुम्हारे फिर भीतर चले जाने के भय से वह तुम्हें पूरी तरह देख भी नहीं सकती ! नगेन्द्र ! दीपक की ओर अपनी पीठ करके खड़े होने की जगह एक बार दीपक की ओर अपना मुंह करके खड़े हो जाओ। यहां से हटो मत; खड़े रहो। तुम क्या जानोगे कि एक अनाथ बालिका संसार से, बन्धु-बांधव से अपमानित होकर भी केवल एक बार तुम्हारा मुंह देखने के लिए कितनी व्याकुल है !

उल्लू बोलता है—तुम यहां से हट जाओगे तो कुन्द डर जाएगी। विजली चमकी—तुम खड़े रहो अन्यथा कुन्द भयभीत होगी। बादल गरज रहे हैं; आंधी-पानी आने में अधिक देर नहीं है। ऐसे समय उस अनाथिनी को कौन आश्रय देगा ?

तुम्हारे खिड़की खोलने के साथ ही पतंगे भीतर जाने लगे हैं—अपने प्रियतम से मिलने की उत्कण्ठा में। कुन्द यह सब देखकर सोच रही है कि कौन-सा पुण्य करने से पतंग का जन्म मिलता है—पर कुन्द ! पतंग तो जल मरते हैं। कुन्द भी सोच रही है, 'मैं क्यों नहीं जल मरी ?'

थोड़ी देर बाद नगेन्द्र खिड़की ज्यों की त्यों बन्द कर भीतर चले गए। कुन्द मन में कहने लगी, 'निष्ठुर ! वहीं खड़े रहते तो तुम्हारी क्या हानि हो जाती ? ... नहीं, नहीं, रात में तुम अधिक

न जागो । जाओ, सो रहो, नहीं तो तबियत खराब हो जाएगी । कुन्द मरती है तो मरे ; वह तो अनाथा है, पर तुम्हें कष्ट क्यों हो ?’

खिड़की वन्द हो जाने पर भी कुन्द बहुत देर तक उधर देखती रही । अन्त में निराश हो आंसू पोंछती वहाँ से उठी । सामने जो रास्ता दिखाई दिया, उसीसे बिना जाने-बूझे आगे बढ़ने लगी । उसे स्वयं नहीं मालूम कि कहां जा रही है । झाऊ के वृक्ष ने मानो अपने स्वर में पूछा, ‘कहां जाती हो ?’ ताड़ के पत्तों ने पूछा, ‘कहां जाती हो ?’ खिड़कियों ने कहा, ‘जाओ, अब हम नगेन्द्र के दर्शन नहीं करा सकतीं ।’ फिर भी जाते हुए कुन्द फिर-फिरकर बार-बार उधर देख लेती है ।

जिधर राह मिली, उधर ही कुन्द चल पड़ी । उधर बादल घने हो गए ; आकाश पर काला पर्दा खिंच गया । बिजली अनाथा के इस त्याग पर हृदयहीन पिशाची की भांति दांत खोल हंसने लगी । हवा तेज हो गई । बादल गरजने लगे । संसार अंधकार में ढक गया । कुन्द ! तू इस समय कहां जाएगी ?

आंधी के साथ वर्षा आ गई । ऐसे भयानक समय में अनाथा कहां जाएगी ?

वर्षा में भीगती कुन्द आगे बढ़ने लगी । आगे जाने पर बिजली की चमक में उसे एक छोटा धर दिखाई पड़ा । कच्ची दीवार से लगी थोड़ी आड़ की जगह थी । वहीं दरवाजे से पीठ लगाकर वह बैठ गई । बैठने में कुछ शब्द हुआ । अन्दर कोई जाग रहा था । उसने सोचा—हवा से ऐसा हुआ होगा ; किन्तु जब द्वार के पास सोया कुत्ता भूंकने लगा तो उसने बाहर आकर देखा—कोई आश्रयहीन बालिका है । पूछा, “तू कौन है ?”

कुन्द न बोली ।

फिर सवाल हुआ, “बोलती क्यों नहीं, कौन है ?”

कुन्द ने कहा, “वर्षा के कारण जरा खड़ी हो गई हू ।”

“अरे ! यह तो परिचित स्वर है । भीतर आ ।”

भीतर जाने पर उसने दीप जलाया । कुन्द ने देखा—यह तो

हीरा है ।

हीरा बोली, “समझ गई। यहीं दो दिन ठहरो। कोई डर की बात नहीं है। किसीको खबर न होगी।”

हीरा के घर की दीवार छोटी हैं। दो छोटे-छोटे कमरे हैं ; दीवारों पर फूल-पत्ते, हाथी-घोड़े, राम-लक्ष्मण इत्यादि के चित्र बने हैं। आंगन में गुलाब, मल्लिका, जूही इत्यादि पौधे लगे हैं। बाबू की पुष्पवाटिका का माली स्वयं आकर इन वृक्षों को लगा गया था। हीरा चाहे तो सम्पूर्ण वाटिका यहां उठाकर ला सकती है। माली को इसमें लाभ था तो इतना कि हीरा अपनी काली चूड़ी पहने हाथ से उसे तम्बाकू चढ़ा देती है। माली अपने घर जाकर रात में उसीकी चिन्ता किया करता है।

हीरा के मकान में हीरा की दादी और हीरा रहती है। एक कमरे में हीरा और एक में उमकी दादी सोती है। हीरा ने कुन्द को अपने कमरे में बिछौना बिछाकर सुलाया। कुन्द सो गई पर नींद नहीं आई। दूसरे दिन भी वह वहीं रही। हीरा ने कहा, “दो-एक दिन रहो। देख लो कि तुम्हारे चले आने से वहां क्या-क्या होता है। इसके बाद तुम्हारी जहां इच्छा हो, चली जाना।” कुन्द रह गई। कुन्द की राय से हीरा ने उसे छिपाकर रखा। घर में ताला बन्द रखा जाता कि दादी कुन्द को न देख पाएं। कमरा बन्द कर वह बाबू के घर काम पर गई। वहां से लौटने पर दोपहर को जब उसकी दादी तालाब में स्नान करने गई तो हीरा ने ताला खोलकर कुन्द को स्नान-भोजन कराया। फिर ताला बन्द करके चली गई। रात में लौटी ; फिर दोनों एकसाथ सो गई।

इसी समय बाहर के दरवाजे की कुंडी किसीने धीरे-धीरे खट-खटाई। हीरा को आश्चर्य हुआ। केवल एक आदमी रात में आकर कभी-कभी कुंडी खटखटाता था। वह बाबू का दरबान है ;

किन्तु उसके हाथ की खटखटाई कुंडी की ध्वनि इतनी कोमल नहीं होती थी। हीरा पहचान न सकी कि कौन कुंडी खटखटा रहा है। बाहर का दरवाजा खोलकर देखा कि कोई स्त्री है। पहचानकर बोली, “कौन, गंगाजल ? आज कैसे मेरा भाग्योदय हुआ ?” हीरा की गंगाजल मालती ग्वालिन थी। इसका घर देवीपुर में देवेन्द्र बाबू के घर के निकट ही है। बड़ी रसिक स्त्री है। तीस-बत्तीस की अवस्था में भी रंगीन साड़ी पहने है। होंठों पर पान की लाली है। गोरी है पर मुह पर कहीं-कहीं भाई पड़ गई हैं। नाक चपटी है। माथे पर गोदना है। मुंह पर तम्बाकू पीने के चिह्न हैं। मालती न तो देवेन्द्र की दासी है, न आश्रिता; फिर भी उसके कहने में है और बहुत-सी बातें जो दूसरों को असाध्य बोध होती हैं, वह सहज में पूरा कर देती है। मालती को देख चतुर हीरा ने कहा, “बहन गंगाजल ! ईश्वर से मैं प्रार्थना करती हूं कि अन्तिम समय तुझे पाऊं, पर अभी क्यों ?”

गंगाजल ने धीरे से कहा, “तुम्हें बाबू ने बुलाया है।” हीरा हंसकर बोली, “तुझे कुछ मिलेगा क्या ?”

मालती ने अंगुलियों से हीरा को ठुनकाकर कहा, “चल दूर हो ! तू अपने समान सबको समझती है ? जल्दी चल।”

हीरा तो यही चाहती थी। आकर धीरे से कुन्द से कहा, “मैं बाबू के यहां जा रही हूं। मालूम नहीं क्यों बुलाया है !” इतना कह दीपक बुझा दिया और अंधेरे में अन्दाज से ही अच्छे वस्त्राभूषण पहन मालती के साथ चली गई।

देवेन्द्र के बैठकखाने में हीरा अकेली गई। देवेन्द्र सुरादेवी की आराधना कर रहे थे। अभी बुद्धि ठिकाने थी। बोले, “हीरा ! उस दिन अधिक शराब पीने के कारण मैं तुम्हारी बात का मतलब नहीं समझ सका था। तुम क्यों आई थी, यही पूछने के लिए बुलाया है।”

हीरा ने कहा, “केवल आपको देखने आई थी।”

देवेन्द्र हंसते हुए बोले, “तुम बड़ी चतुर हो। बड़े भाग्य से नगेन्द्र को तुम्हारी जैसी सेविका मिल गई है। मैं जानता हूं कि

तुम हरिदासी वैष्णवी का पता लगाने और यह जानने आई थीं कि मैं क्यों वेश बदलकर दत्तगृह में जाता हूँ । तुम्हें कुछ मालूम भी हो गया । मैं भी तुमसे नहीं छिपाऊंगा । अपने स्वामी का काम करके तुमने उनसे काफी पुरस्कार पाया है । मेरा एक काम करो, मैं भी तुम्हें खुश कर दूंगा ।”

देवेन्द्र ने हीरा को अनेक प्रलोभन देकर कुन्द को दिखा देने के लिए कहा । सुनकर क्रोध से हीरा की आँखें लाल हो गईं । उसके हृदय में देवेन्द्र की बात तीर की तरह चुभ गई । उठकर बोली, “महाशय ! मैं दासी हूँ, इसीसे आप ऐसी बातें कह सके । इसका उत्तर मैं नहीं दे सकती । अपने मालिक से कहूँगी । वही इसका उचित उत्तर देंगे ।” इतना कहकर हीरा तेजी से चली गई । देवेन्द्र थोड़ी देर तक अप्रतिभ और भग्नोत्साह होकर चुपचाप बैठे रहे । फिर जी भर कर ब्रांडी पी और गीत गाने लगे ।

सवेरे हीरा अपने काम पर गई । कुन्द के इस प्रकार चले जाने पर दो दिनों तक दत्तगृह में बड़ा कोहराम मचा । सबने समझ लिया कि वह अप्रसन्न होकर गई है । टोले-मुहल्ले के लोगों में भी कुछ के कानों तक यह खबर पहुँच गई । नगेन्द्र सुनकर सोचने लगे कि अपमान-भरी बातें सुनकर मेरे घर में रहना अनुचित समझ कुन्द चली गई है । तब वह कमल के साथ जाने को राजी क्यों नहीं हुई ? उनके मुँह पर चिन्ता के बादल छा गए । इस दुःख के समय किसीकी हिम्मत उनके पास जाने की नहीं होती थी । सूर्यमुखी का इसमें क्या दोष है यह सब वे नहीं जानते थे, फिर भी उससे बोलना-चालना भी छोड़ दिया । कुन्द की खोज के लिए चारों ओर आदमी भेजे गए ।

सूर्यमुखी क्रोध या ईर्ष्या में जो कहे, पर कुन्द के भागने से उसे भी बड़ा दुःख हुआ । कमल ने उसे समझा दिया था कि देवेन्द्र के साथ उसके गुप्त प्रणय की बात बिल्कुल भूठी है । स्वामी की

उदासी देख उसे गहरी मर्मव्यथा हुई। उसे अपनी करनी पर घोर पश्चात्ताप होने लगा। उसने भी कुन्द की खोज में आदमी भेजे।

कमल ने कलकत्ता जाने का प्रस्ताव स्थगित कर दिया। उसने सूर्य या और किसीको भला-बुरा नहीं कहा। अपने गले का हार निकालकर घर के सभी नौकरों से कहा, “जो कुन्द को ले आवेगा, उसे यही हार इनाम दूंगी।”

हीरा सब देख रही थी पर कुछ नहीं बोली। हार देखकर एक बार लोभ हुआ किन्तु उसने मन पर काबू पा लिया। दूसरे दिन भी दादी के स्नान के लिए चले जाने पर कुन्द को खिला आई। फिर रात में आकर पहले दिन की तरह उसके साथ ही सो गई। परन्तु कुन्द या हीरा—किसीको भी नींद न आई। कुन्द अपने मानसिक दुःख से जागती रही; हीरा अपने सुख-दुःख की चिन्ता में जागी। वह अत्यन्त गोपनीय चिन्ता कर रही थी।

हीरा ! छि ! तेरा मुंह तो देखने में बुरा नहीं है, उम्र भी कम है, फिर तेरे हृदय में इतना छल-कपट क्यों ? विधाता ने उसे धोखा दिया है, इसलिए वह सबको धोखा देना चाहती है। हीरा को यदि सूर्यमुखी के स्थान पर रख दिया जाता तो क्या हीरा में इतना छल-कपट रहता ? इसके उत्तर में हीरा कहती है, ‘नहीं।’ हीरा को हीरा के स्थान पर रखा गया है, इसलिए हीरा हीरा है। लोग कहते हैं, ‘सब दुष्टों का दोष है।’ दुष्ट कहा करते हैं कि ‘मैं बड़ा अच्छा आदमी होता पर लोगों के दोष से मैं दुष्ट हो गया हूं।’ लोग कहते हैं, ‘पांच क्यों नहीं सात हुआ ?’ पांच कहता है कि ‘मैं सात होता; किन्तु दो और पांच मिलाकर सात होता है, विधाता अथवा विधाता के बनाए हुए लोग यदि मुझे दो और देते, तो मैं जरूर सात हो जाता।’ हीरा यही सब सोच रही थी।

हीरा सोच रही थी, ‘इस समय क्या करना उचित है ? पर-मेश्वर ने जब सब प्रकार की सुविधा कर दी है तब ऐसा न हो कि कहीं मेरे दोष से सब चौपट हो जाए। यदि कुन्द को बाबू के यहां वापस ले जाऊं तो कमल हार देगी, मालकिन भी कुछ जरूर ही देंगी, और ऐसे अवसर पर बाबू से भी बिना कुछ लिए नहीं

रहूंगी । और यदि कुन्द को देवेन्द्र के हाथ सौंप दूं, तो भी पूरे रूपये मिलेंगे । किन्तु यह तो प्राण रहते हो नहीं सकता । देवेन्द्र क्या सचमुच कुन्द में इतनी सुन्दरता देखते हैं ? हम लोग अपनी देह गलाकर खाती हैं, यदि अच्छी-अच्छी चीजें खाएं, अच्छे-अच्छे गहने-कपड़े पहनें, रात-दिन पर्दे के अन्दर रहें, तो हम भी वैसी ही सुन्दर हो सकती हैं । बिना पंक के कमल नहीं होता और बिना कुन्द के मैं देवेन्द्र का मन अपनी ओर नहीं खींच सकती । पहले मैं किसीके प्रेम की बात सुनकर हंस देती थी, कहती थी, प्रेम से दुःख-सुख क्या हो सकता है ? पर अब हंसी नहीं आती । मेरा निश्चय था कि और जो चाहे प्रेम करे, मैं किसीसे प्रेम न करूंगी । भगवान ने मेरे अभिमान को तोड़ दिया । दूसरे को चोर-रूप में पकड़ने गई थी, परन्तु मेरा ही मन चोरी चला गया । कैसा सुन्दर मुखड़ा है, कैसी अच्छी शरीर की गठन है ! गले का तो पूछना ही क्या ? दूसरे किस पुरुष में ये बातें है ? कहता है, कुन्द को ला दे । क्या यह सुनने के लिए मैं ही थी, कोई दूसरा आदमी नहीं था ? इच्छा तो हुई कि लगाऊं नाक पर एक घूसा । पर जाने दो इन सब बातों को । यह मार्ग कण्टकाकीर्ण है । इस जन्म का सब सुख-दुःख ईश्वर को अर्पण कर दिया है । इसीसे कुन्द को देवेन्द्र के हाथ में नहीं दे सकूंगी । इस बात की याद आते ही हृदय में आग लग जाती है । मैं कोशिश करूंगी कि कुन्द कभी देवेन्द्र के हाथ न लगने पावे । वैष्णवी बनें या वासुदेव बनें, अब उस मकान में इनकी दाल नहीं गल सकती । तो कुन्द को वहां रख आना ही अच्छा है, पर कुन्द अब वहां न जाएगी । हां, सब लोग यदि आदरपूर्वक ले जाएं तो जा भी सकती है । मेरे मन में एक बात है, क्या ईश्वर उसे पूरा करेंगे ? क्या सूर्यमुखी का मान कम होगा ? ईश्वर चाहें तो सब कुछ हो सकता है । परन्तु सूर्यमुखी के ऊपर मेरा इतना क्रोध क्यों है ? उसने तो कभी मेरी बुराई नहीं की, वरन सदा मेरी भलाई ही की है । वह मुझे प्यार भी करती है । फिर क्रोध क्यों ? इसलिए कि सूर्यमुखी है ? मैं दुःखी हूं । वह बड़ी है; मैं छोटी हूं । वह मालिक है; मैं दासी हूं । इसीलिए

उसपर मुझे इतना क्रोध है ? यदि कहो कि ईश्वर ने उसको बड़ा बनाया है, इसमें उसका क्या दोष है, तुम उससे द्वेष क्यों रखती हो ? तो मेरा कहना है कि ईश्वर ने ही मुझे द्वेषी बनाया, इसमें मेरा क्या दोष है ! मैं उसकी बुराई करना नहीं चाहती, परन्तु उसकी बुराई से यदि मेरी कोई भलाई होती हो तो मैं क्यों न वैसा करूं ? अपनी भलाई कौन नहीं चाहता ? मुझे पैसे की जरूरत है, वे कहां से आएंगे ? दत्तगृह के सिवा अन्यत्र धन कहां है ? और दत्तगृह से रुपये लेने का उपाय एक ही है । कुन्द के ऊपर नगेन्द्र बाबू की आंख लगी है, वे इस समय उसके उपासक हो रहे हैं । वे बड़े आदमी हैं, चाहे जो कर सकते हैं ; परन्तु सूर्यमुखी के कारण कुछ नहीं कर पाते । यदि दोनों में कलह हो जाए तो काम बन सकता है ।

‘कुन्द एक मूर्ख स्त्री है । मैं अपनी चतुराई से कुन्द को शीघ्र ही अपने वश में कर लूंगी । इतने दिनों में बहुत कुछ कर भी लिया है । जो चाहूं मैं कुन्द से करा सकती हूं । जब पूजा आरम्भ करेंगे तब बाबू कुन्द के इशारे पर नाचेंगे और इधर मैं कुन्द को अपने इशारे पर नचाऊंगी । इस प्रकार पूजा का प्रसाद मैं भी पा सकूंगी । मैंने जो सोचा वह हो गया तो बिना काम किए मुझे रुपये-पैसे की कमी न रहेगी । देखें मां दुर्गा क्या करती हैं ? नगेन्द्र को कुन्दनन्दिनी दूंगी, किन्तु इतनी जल्दी नहीं । अभी कुछ दिन और छिपा रखूं । वियोग की ज्वाला से प्रेम पक्का होता है । जब ऐसा होगा तभी कुन्द को बाहर करूंगी । पर इसके लिए दादी को किसी दूसरे गांव में पहुंचा देना होगा, अन्यथा अधिक समय तक कुन्द को छिपाना मुश्किल होगा ।’

बस, हीरा दादी को दूसरे गांव एक सम्बन्धी के यहां पहुंचा आई । कुन्द उसकी सेवा-सहृदयता देख सोचने लगी, ‘हीरा के समान कोई नहीं है ; कमल भी मुझे इतना प्यार नहीं करती ।’

यह तो हुआ । कुन्द तो वश में होगी ; किन्तु जब तक सूर्यमुखी नगेन्द्र की आंखों का कांटा नहीं होगी, तब तक कुछ विशेष फल नहीं मिलेगा । हीरा दोनों में फूट डालने में लग गई ।

एक दिन सबेरे हीरा मालिक के यहां काम कर रही थी । कौशल्या नाम की एक और सेविका भी वहां काम में लगी थी । हीरा ने कहा, “कौशल्या ! आज मेरी तबियत कुछ खराब है, क्या तू मेरा काम कर देगी ?” कौशल्या हीरा से डरती थी, इसलिए बोली, “क्यों न कर दूंगी ? सभीको देह पर पड़ता है । फिर हम तो एक ही मालिक के नौकर हैं ।” पर हीरा तो छेड़कर भगड़ा करने का निश्चय कर चुकी थी, इसलिए ऐसे अनुकूल उत्तर पर भी आंखें तरेरकर बोली, “तू मुझे गाली देती है ? आजकल तेरा दिमाग बहुत बढ़ता जा रहा है ।” कौशल्या चकित होकर बोली, “मैंने तुझे कब गाली दी ?”

हीरा—सबकी देह पर पड़ता है, यह क्या है ? क्या मैं मर रही हूं । तेरी देह पर पड़े ।

कौशल्या—भले पड़े, पर इसमें नाराज होने की क्या बात है ? एक दिन तो मरना ही है । यमराज न तुझे भूलेंगे, न मुझे ।

हीरा—यमराज तुझे न भूलें । तू मुझसे द्वेष रखती है, जल्द मर जा ।

कौशल्या—तू ही मर । यमराज तुझे न भूलें । मुंहजली ! रांड ? सतभतरी !

कौशल्या भगड़ा करने में कम न थी । उसके विकराल रूप के सामने हीरा को हार माननी पड़ी । वह मालकिन के पास फरियाद करने गई । जाते ही रोना शुरू कर दिया । पर सूर्यमुखी पर इस अभिनय का असर नहीं पड़ा । उन्होंने कौशल्या को मामूली तौर पर डांट-डपट दिया । पर हीरा ने इससे सन्तुष्ट न होकर कहा, “उस हरामजादी को निकाल बाहर करो, अन्यथा मैं नहीं रहूंगी ।”

इसपर सूर्यमुखी क्रुद्ध होकर बोली, “तेरा मिजाज बहुत बढ़ गया है । दोष तेरा है, फिर भी मैंने डांट दिया । अब तेरी बात मान-

कर मैं उसे अकारण निकाल दूँ ? मैं ऐसा अनुचित काम नहीं कर सकती । तेरी जाने की इच्छा है तो तू जा ।”

हीरा तो चाहती ही थी । ‘अच्छा जाती हूँ’ कहकर रोती हुई नगेन्द्र बाबू के बैठकखाने में पहुँची । वे अकेले बैठे थे । हीरा को रोते देख पूछा, “तू रोती क्यों है ?”

हीरा—मालकिन ने मुझे जवाब दे दिया है, मेरा हिसाब करा दीजिए । अब मैं यहां नहीं रहना चाहती । मालकिन की बुद्धि ठिकाने नहीं है, किसे कब क्या कह दें इसका कोई ठीक नहीं ।

नगेन्द्र ने कड़ाई के साथ कहा, “क्या ?”

हीरा पहले से ही सोचकर आई थी, बोली, “उस दिन बेचारी कुन्द को उन्होंने क्या नहीं कहा ? वह सब सुनकर बेचारी ने घर ही छोड़ दिया । हमें भय लगता है कि कहीं हम लोगों को कुछ लगा न दें । फिर तो हम मुंह दिखाने लायक भी न रहेंगी । इसीलिए मैं पहले से ही अलग हो जाना चाहती हूँ ।”

“आखिर क्या बात है ?”

“मैं लज्जा के कारण उन बातों को आपके आगे नहीं कह सकती ।”

नगेन्द्र के मुंह पर क्रोध की छाया दिखाई पड़ी । बोले, “आज घर जा ; कल आना ।”

हीरा की मनोकामना पूरी हुई ।

नगेन्द्र वहां से उठकर सूर्यमुखी के पास गए । हीरा ने दबे पांव छिपकर अनुसरण किया ।

सूर्यमुखी को एकान्त में बुलाकर नगेन्द्र ने पूछा, “क्या तुमने हीरा को जवाब दिया है ?” सूर्यमुखी ने कहा, “हां, दिया है ।” इतना कहकर हीरा और कौशल्या का पूरा हाल बता दिया । सुनकर नगेन्द्र ने कहा, “वह मर जाए, पर तुमने कुन्द को क्या कहा था ?”

नगेन्द्र ने देखा, इस प्रश्न से सूर्यमुखी का मुंह सूख गया । दबी जवान से बोली, “क्या कहा था ?”

“कोई लगनेवाली बात ?”

कुछ देर तक सूर्य कुछ नहीं बोल सकी। फिर बोली, “तुम मेरे सर्वस्व हो। तुम्हीं मेरे लोक-परलोक हो। तुमसे मैं कोई बात कैसे छिपाऊंगी? मैंने कुन्द को कई कड़ी बातें कही थीं। तुम दुखी होगे, इस डर से तुम्हें नहीं बताया था। अपराध क्षमा करो।” इतना कहकर उसने हरिदासी वैष्णवी के परिचय से लेकर कुन्द के तिरस्कार की सब बातें निष्कपट होकर बता दी। फिर कहा, “मैं कुन्द को निकालकर स्वयं पछता रही हूँ। गांव-गांव में उसे ढूँढ़ने के लिए आदमी भेजे हैं। पता लगता तो मैं उसे लौटा लाती।”

नगेन्द्र बोले, इसमें तुम्हारा विशेष अपराध नहीं है। जैसी कलंक की बातें तुमने सुनी थीं, उसमें कोई भले आदमी की स्त्री उससे न मीठी बात कर सकती, न उसे अपने घर में रख सकती है; किन्तु पहले अच्छी तरह सोच-समझ लेतीं तो अच्छा होता।”

सूर्यमुखी—नहीं सोचा-विचारा उसीका तो फल पा रही हूँ। मुझसे भूल हो गई।

इतना कहकर पतिप्राणा सूर्य नगेन्द्र के दोनों चरण अपने हाथ से पकड़ उन्हें अपने आंसुओं से गीला करती हुई बोली, “तुम मेरे प्राणों से अधिक प्रिय हो। अब कोई बात न होगी, होगी तो कहूंगी। मेरे इस अपराध को क्षमा करो।”

नगेन्द्र बोले, “तुम्हें कहने की जरूरत नहीं। जानता हूँ, तुमने सन्देह किया था कि मैं कुन्द पर अनुरक्त हूँ।” सूर्यमुखी नगेन्द्र के चरणों में सिर रख रोने लगी। फिर बोली, “तुमसे क्या कहूँ? कुन्द को निकालकर मैं इस समय जो दुःख पा रही हूँ उसे मैं ही जानती हूँ। मेरे मरने पर तुम्हें कष्ट होगा, इसी विचार से मैं मर भी नहीं सकती। अन्यथा जिस समय सुना था कि कोई दूसरी तुम्हारी हृदयेश्वरी है, उसी समय मरने का विचार किया था। यह मुंहदेखी बात नहीं है, मैं कपटशून्य हृदय से सचमुच मरना चाहती हूँ। मेरे अपराध क्षमा करो।”

नगेन्द्र देर तक स्थिर भाव से बैठे रहे, फिर लम्बी सांस लेकर बोले, “सूर्य! सब अपराध मेरा है। तुम्हारा कोई दोष नहीं। मैं सचमुच तुम्हारे निकट विश्वासघाती हूँ। मैं तुम्हें भूल सचमुच कुन्द

को पाने की चेष्टा करता था। तुमसे क्या कहूं ? मैंने जो कष्ट पाए हैं और इस समय भी जैसा कष्ट पा रहा हूं वह तुमसे कह नहीं सकता। तुम समझती होगी, मैंने मन को स्थिर और वशीभूत करने की चेष्टा नहीं की, पर बात ऐसी नहीं है। मैंने उसका जितना तिरस्कार किया है उतना तुम नहीं कर सकतीं। पर मेरा चित्त वश में कैसे होता ? मैं तो पापात्मा हूं।”

सूर्यमुखी अब नहीं सह सकी। हाथ जोड़ कातर स्वर से बोली, “अपने मन की बातें रहने दो, मुझसे मत कहो। मुझे दुःख होता है। मेरे भाग्य में जो था, वह हुआ। ये सब बातें मेरे सुनने योग्य नहीं हैं।”

नगेन्द्र बोले, “नहीं, यह नहीं होगा। तुम्हें सुनना ही होगा। कई दिनों से मैं इन सब बातों को कहना चाहता था, पर अवसर नहीं मिला। मैं अब नहीं रहूंगा। मरूंगा नहीं, पर कहीं चला जाऊंगा। अब यहां रहने में सुख नहीं है। तुमसे मुझे अब सुख नहीं मिलता। मैं तुम्हारा अयोग्य स्वामी हूं। यहां रहकर तुम्हें कष्ट न दूंगा। कुन्द की खोज में देश-देशान्तर भ्रमण करूंगा। तुम यहां की माल-किन रहोगी। अब से अपने को विधवा समझो। जिसका स्वामी इतना नीच है वह विधवा नहीं तो क्या है ? पर मैं नीच चाहे जितना होऊं या हो जाऊं, तुम्हें धोखा नहीं दूंगा। यह बात साफ कह देना चाहता हूं कि मैं दूसरी स्त्री के लिए मर रहा हूं। मैं यह गांव छोड़ चला। यदि कुन्द को भूल सका तो फिर आऊंगा, अन्यथा तुमसे यही अन्तिम भेंट है।”

वज्र-समान इन बातों को सुन सूर्यमुखी क्या कहती ? मूर्तिवत् वहीं बैठी रही। फिर आंचल में मुंह छिपा फूट-फूटकर रोने लगी। हत्यारा बाघ जैसे छटपटाते हतजीव की यंत्रणा देखता है, नगेन्द्र भी उसी प्रकार सूर्यमुखी को देख रहे थे। मन में कहते थे, ‘आखिर तो यह मरेगी ही; फिर जैसे कल मरेगी, वैसे आज। ईश्वर की यही इच्छा है। मैं क्या करूं ? क्या मैं चाहकर इसका प्रतिकार कर सकता हूं ? मैं तो मरने के लिए तैयार हूं, पर क्या मेरे मरने पर सूर्यमुखी बचेगी ?’

नहीं नगेन्द्र ! तुम्हारे मरने पर सूर्यमुखी नहीं बचेगी, पर तुम्हारा मरना ही अच्छा था ।

कुछ देर बाद सूर्य उठ बैठी और स्वामी के पांव पकड़कर बोली, “अच्छा, मुझे एक भीख दो ।”

नगेन्द्र—क्या ?

सूर्यमुखी—एक महीना और घर रहो । यदि इस अवधि में कुन्द का पता न लगे तो चले जाना ; मैं नहीं रोकूंगी ।

नगेन्द्र चुपचाप उठकर चले आए ; मन ही मन एक मास रहना स्वीकार किया । सूर्य मन में कह रही थी, ‘मेरे प्राणधन ! मेरे सर्वस्व ! तुम्हारे पांव से कांटा निकालने के लिए मैं अपने प्राण तक दे सकती हूँ । तुम पापिष्ठा सूर्य के कारण गांव छोड़ दोगे ? तुम बड़े हो या मैं ?’

हीरा की नौकरी छूट जाने पर भी दत्तगृह में क्या हो रहा है, इसकी खोज-खबर रखने को वह सदा उत्सुक रहती है । वहां के किसी आदमी को पाकर घण्टों उससे इधर-उधर की बातें करती है ।

इसी तरह कुछ दिन बीत गए । एक दिन बड़ा गोलमाल हुआ । देवेन्द्र के साथ हीरा का परिचय हुआ, उसी दिन से हीरा के घर मालती ग्वालिन का आवागमन बढ़ गया । मालती ने देखा कि हीरा इससे सन्तुष्ट नहीं । उसने यह भी लक्ष्य किया कि एक घर प्रायः बन्द रहता है और उसमें बाहर से ताला लगा रहता है । एक दिन मालती आई तो देखा ताला नहीं लगा है ; हीरा भी नहीं है । उसने सांकल हटा किवाड़ खोलने की चेष्टा की । मालूम हुआ, भीतर से बन्द है । समझ गई, अन्दर कोई है । उसने हीरा से इसकी चर्चा नहीं की । पहले सोचा, कोई पुरुष होगा, पर मालती जानती थी कि किससे किसका कैसा सम्बन्ध है, इसलिए विचार करने पर पुरुष होने का विश्वास उसे नहीं हुआ । अकस्मात् मन में सन्देह उपजा—कुन्द तो नहीं है ?

उसने इसकी जांच के लिए एक चाल चली। हीरा के पास एक हिरन का बच्चा था। वह बड़ा चंचल था; सदा बंधा रहता था। मालती ने उसे खिलाते-खिलाते आंख बचाकर उसका बंधन खोल दिया। बच्चा भागा—हीरा उसके पीछे दौड़ी। मालती चिल्लाई, “अरे बाप ! मेरी हीरा को क्या हो गया है ?” फिर बंद कमरे के किवाड़ों पर हाथ मार कातर स्वर में बोली, “कुन्द ! जल्द बाहर आओ; देखो, हीरा को क्या हो गया ?” कुन्द ने घबराकर दरवाजा खोल दिया। मालती उसे देख हंसने लगी। कुछ भी न देख कुन्द ने दरवाजा बंद कर लिया और डर के मारे हीरा को इस बारे में कुछ बताया भी नहीं।

मालती ने देवेन्द्र को समाचार दिया। दूसरे दिन देवेन्द्र ने स्वयं वहां जाकर पता लगाने का विचार किया।

एक ओर अपमान एवं तिरस्कार, दूसरी ओर प्रणय। इन दो भावधाराओं में कुन्द का हृदय मथने लगा। अन्त में प्रणय की विजय हुई। कुन्द सूर्यमुखी के अपमान की बात धीरे-धीरे भूलने लगी। हृदय नगेन्द्रमय हो गया। वह सोचने लगी, ‘मैं घर छोड़कर क्यों चली आई ? दो बातें सह ही लेती तो मेरी क्या हानि होती ? वहां रहने पर नगेन्द्र तो देखने को मिलते। जब से आई, एक बार भी उनके दर्शन नहीं हुए। तो क्या लौट जाना उचित होगा ? यदि मुझे फिर न निकाल दें तो जा सकती हूं।’ वह रात-दिन इसी प्रकार सोचा करती है। उसने मान लिया है कि दत्तगृह में जाना ही उचित है, परन्तु अब इतना ही जानना रह गया है कि वहां जाने पर सूर्यमुखी रखेगी या निकाल देगी। अन्त में उसने बहुत सोच-समझकर स्थिर किया कि वह रखे या निकाले, मैं वहां जरूर जाऊंगी। पर वहां जाए कैसे ? अकेले जाने में शर्म लगती है। हीरा पहुंचा दे तो अच्छा हो, पर हीरा से कहने की हिम्मत नहीं होती।

एक दिन दो-चार घड़ी रात रहते ही कुन्द उठी और किवाड़ खोल पिंजरे से बाहर निकल गई और संदिग्ध चित्त से दत्तगृह की ओर चली। वह और कुछ नहीं, केवल एक बार नगेन्द्र को देखना चाहती है। छिपकर देख आने में हर्ज क्या है ?

अटारी के पास पहुंचकर देखा कि अभी सवेरा होने में विलम्ब है। रास्ते की ओर आंख उठाकर देखा—नगेन्द्र कहीं नहीं हैं। सोचा—अभी उठे नहीं होंगे। सवेरा हो जाने दो, तब तक मैं आड़ में बैठती हूं। वह बैठ गई। सवेरा हो चला—पंछी बोलने लगे। तब वह निराश होने लगी। प्रभात होने पर किसीके देख लेने का भय है, यह सोच वहां से उठी। नगेन्द्र कभी-कभी सुबह उठकर फुलवारी में घूमने आते थे। सोचा—कहीं वहां न हों। पर वहां कैसे जाए ? फुलवारी चारदीवारी से घिरी है। जब तक दरवाजा न खुले, वहां जाना कठिन है। दरवाजा खुला है या बन्द, यह देखने कुन्द उधर गई।

वहां जाकर देखा—द्वार खुला है। साहस करके भीतर चली गई। किनारे-किनारे चलकर एक बकुल वृक्ष के नीचे खड़ी हो गई। बकुल की आड़ से फुलवारी की ओर देखा, पर नगेन्द्र के दर्शन नहीं हुए। बारहदरी की ओर दृष्टि गई तो देखा—वहां कोई सोया है। सोचा—कहीं वे ही न हों। वह धीरे-धीरे आगे बढ़ी। इसी समय वह व्यक्ति उठकर बाहर निकला। कुन्द ने देखा—वह नगेन्द्र नहीं, सूर्यमुखी है।

कुन्द डरकर कामिनीलता की आड़ में खड़ी हो गई। भयवश न आगे बढ़ सकी, न पीछे हट सकी। सूर्यमुखी फूल चुनती हुई उसीकी ओर आने लगी। कुन्द ने सोचा—अब पकड़ी गई। सूर्य की दृष्टि उसकी ओर गई। दूर से उसने आवाज दी, “वहां कौन है ?” भयवश कुन्द कुछ न बोली। उसके पांव भी न उठे। इतने में सूर्यमुखी निकट आ गई। देखा—कुन्द है। विस्मित होकर बोली, “कौन, कुन्द ?”

कुन्द तब भी उत्तर न दे सकी। सूर्यमुखी ने कुन्द का हाथ पकड़ लिया। बोली, “कुन्द ! आओ बहिन, आओ। अब मैं तुम्हें कुछ न कहूंगी।”

सूर्य अपने हाथ से पकड़ कुन्द को अन्तःपुर में ले गई ।

उसी दिन रात में देवेन्द्र वेश बदल हीरा के घर गए । सर्वत्र खोजकर देखा, कुन्द नहीं मिली । हीरा मुह में कपड़ा लगा हसने लगी । देवेन्द्र ने क्रुद्ध होकर पूछा, “हंसती क्यों है ?”

हीरा ने कहा, “तुम्हारा पागलपन देखकर । चिड़िया पिंजरे से निकल गई । दूढ़ते-दूढ़ते बाबू के घर तक गई तो देखा, इस बार वहां उसका बड़ा आदर हो रहा है ।”

देवेन्द्र हताश हो गए, पर मन में आया—थोड़ी देर और बैठकर भावभगी देख लें । आकाश में बादल का टुकड़ा देख बोले, “पानी बरसना ही चाहता है । कोई छाता है ?”

हीरा के घर में छाता न था । देवेन्द्र ने कहा, “थोड़ी देर बैठकर पानी का रंग-ढंग देख लू, तब जाऊंगा । कोई बुरा खयाल तो न करेगा ?”

हीरा ने कहा, “क्यों नहीं करेगा ? पर कहने का अवसर तो रात के एकान्त में मुझ स्त्री के पास आकर ही आपने दिया है ।”

देवेन्द्र बैठ गए । हीरा ने तख्त पर साफ बिछावन बिछा दिया । सन्दूक से चांदीमढ़ा हुक्का निकाला । अपने हाथ से उसमें ठण्डा जल भरा, फिर तम्बाकू चढ़ा उनके हाथ में दे दिया । देवेन्द्र ने जेब से ब्रांडी फ्लास्क निकालकर बिना जल मिलाए ही गटगट पी लिया और नशे में चूर होकर देखा कि हीरा की आंखें बड़ी सुन्दर हैं । सचमुच वे सुन्दर थीं । उसकी कान तक फैली कजरारी आंखों में तेज भरा था और कटाक्ष बड़े चंचल थे ।

देवेन्द्र ने कहा, “तुम्हारी आंखें गजब की हैं ।” हीरा मुस्करा पड़ी । देवेन्द्र ने कोने में पड़ा चिकारा उठा लिया और उसके साथ स्वर मिलाकर भावयुक्त गीत गाने लगे । हीरा की आंखों में मस्ती आ गई । वह अपने को भूल गई । यह भी भूल गई कि मैं हीरा और ये देवेन्द्र हैं । उसने देखा—मैं स्त्री, ये स्वामी हैं । उसके

मुंह से अर्धस्फुट स्वर निकला । पर बात निकलते ही उसे होश आ गया । माथा ठनका । वह उन्मत्त हो बोली, “आप तुरन्त मेरे यहां से चले जाइए ।”

देवेन्द्र—यह क्या हीरा ?

हीरा—आप जाइए, नहीं तो मैं जाती हूं ।

देवेन्द्र—मुझे अपने मकान से निकाल क्यों रही हो हीरा ?

हीरा—आप जाते हैं कि मैं लोगों को बुलाऊं ? आप क्यों मेरा सर्वनाश करने यहां आए थे ?

देवेन्द्र—समझ गया ; स्त्रियों का चरित्र ही ऐसा होता है ।

हीरा—तुम भी त्रिया-चरित्र की बात कहते हो ? तुम्हें धर्म-ज्ञान नहीं, दूसरों के भले-बुरे का ज्ञान नहीं, केवल अपने सुख की लालसा में पागल हुए फिरते हो । कब किस प्रकार किस स्त्री का सर्वनाश करूं, यही चिन्ता रहती है । ऐसा न होता तो इस समय मेरे घर क्यों आते ? तुमने मुझे वेश्या समझा था, अन्यथा बैठने की जरूरत क्या थी ? किन्तु मैं कुलटा नहीं हूं । हम लोग गरीब आदमी हैं ; हाथ-पांव चलाकर मजूरी-धंधा करके खाती हैं । कुलटा होने के लिए हमारे पास समय ही कहां है ? किसी बड़े घर की बहू-बेटी रहती तो क्या होती, नहीं कह सकती ।”

देवेन्द्र ने तयौरी बदली । देखकर हीरा प्रसन्न हुई । देवेन्द्र की ओर देखकर बोली, “नाथ ! मैं आपके रूप-गुण पर पागल हो रही हूं, किन्तु आप मुझे कुलटा न समझें । आपको केवल देखकर सुखी होती हूं इसलिए बैठने के लिए मना नहीं करती ; किन्तु मैं अबला ठहरी । मेरे मना न करने पर भी क्या आपका यहां बैठना उचित था ? आप पापी हैं, इसी वजह से मेरे घर में आकर मेरा सर्वनाश करने की चिन्ता में थे । अब आप जाइए ।”

देवेन्द्र ने फिर थोड़ी ब्रांडी पी । तब बोले, “अच्छा हीरा ! तुम्हारा व्याख्यान बड़ा अच्छा हुआ । क्या तुम हमारे ‘ब्रह्मसमाज’ में एक दिन ऐसा ही व्याख्यान दोगी ?”

इस उपहास से हीरा के कलेजे पर गहरी चोट लगी । क्रुद्ध होकर बोली, “मैं धर्म नहीं समझती, पर कुलटा नहीं हूं । धर्म में

मेरी निष्ठा नहीं है। मैं आपके प्रेम के सामने कलंक को तृणवत् तुच्छ मानती हूँ, किन्तु आप मुझे प्यार नहीं करते। तब भला मैं किस सुख के लिए कलंकिनी बनूँगी ? किस बात के लोभ से अपना गौरव गंवाऊँगी ? आप युवती स्त्री देखते ही दूट पड़ते हैं, इसलिए इस समय आप मेरी पूजा भी कर सकते हैं ; किन्तु पीछे कौन किसे पूछता है ? बहुत होगा तो मित्रमण्डली में बैठकर मेरी हंसी उड़ाएंगे। तब मैं कैसे आपकी दासी हो सकती हूँ ? जिस दिन प्यार कीजिएगा, उसी दिन दासी होकर आपकी चरण-सेवा करूँगी।”

देवेन्द्र ने हीरा से एक ही समय तीन प्रकार की बातें सुनीं। मन में यह सोचते चले गए कि ‘जब चाहूँगा तुझसे अपना काम निकाल लूँगा।’ पर सच्ची बात तो यह है, देवेन्द्र हीरा को पहचान नहीं सके।

दोपहर का समय। श्रीश बाबू आफिस चले गए हैं। कमल अपने शयनागार में कार्पेट बुन रही है। सतीश पास ही खेल रहा है, मिट्टी के शेर का सिर चाट रहा है। थोड़ी दूर पर एक बिल्ली बैठी इन दोनों की ओर देख रही है।

काम से थककर कमल ने सतीश से बातचीत आरम्भ की। कहा, “सत्तू बाबू ! बताओ, लोग आफिस जाकर क्या करते हैं ?”

सत्तू बाबू ने उत्तर दिया, “ल ल ल अ।”

कमल—तुम ऐसा न करना।

सत्तू—आम्।

कमल—आम-ओम नहीं ; तुम आफिस जाओगे तो तुम्हारी बहू दिन-भर घर में बैठ आंसू बहाएगी।

कमल सदैव बहू के मारने की धमकी दिया करती थी, अतएव सत्तू ने आज भी वही समझ कहा, “बउ माले।”

कमल—हां, ऐसा करोगे तो बहू मारेगी।

इसी समय एक दासी ने पत्र लाकर दिया। सूर्य का पत्र था :

“जान पड़ता है, कलकत्ता जाकर तुम भी हमें भूल गई ; एक पत्र भी नहीं लिखा । कुन्द मिल गई है । अपनी मानी मनौतियां पूरी कर देना । एक और शुभ समाचार है । कुन्द के साथ हमारे स्वामी का विवाह थोड़े ही समय में होगा । तुम तब तक न आ सकोगी, पर प्रवेश के समय अवश्य आ जाना । तुम्हें देखने की बड़ी इच्छा है ।”

सतीश किसी किताब का पन्ना चबा रहा था । पत्र का अर्थ पूछने पर कमल पर भार देकर उठ खड़ा हुआ और उसकी नाक को भोज्य-सामग्री समझ चवाना आरम्भ किया । बालक के इस क्रीड़ा-कौतुक में कमल सबको भूल गई ।

श्रीशचन्द्र आफिस से लौटे । कमल उन्हें जलपान करा बना-वटी क्रोध के साथ सतीश को ले चारपाई पर जा लेटी । श्रीशबाबू असमय बिजली की चमक देख, हुक्का हाथ में ले हंसते हुए पास ही एक कोच पर बैठ हुक्के को लक्ष्य कर बोले, “हे हुक्के ! तुम्हारे पेट में गंगाजल और सिर पर आग है । तुम साक्षी रहो, मैं कहता हूं कि जो मुझपर नाराज हैं वे अभी बोलेंगी । यदि न बोलीं तो तेरे सिर पर ढेर-सी आग जलाकर दस बार तम्बाकू पीऊंगा ।”

सुनते ही कमल मधुर कोप से बोली, “दस बार ? एक चिलम में तो यह हालत है । दस चिलम में तो नाकोंदम हो जाएगा ।” इतना कह उठकर चिलम उंडेल दी । मानभंग के पश्चात् कमल ने सूर्य का पत्र श्रीश के हाथ में देकर कहा, “इसका मतलब न बताने पर मंत्रित्व का वेतन कट जाएगा ।”

श्रीशचन्द्र—पेशगी महीना दो, अर्थ कर देता हूं ।

महीना वसूल करने के पश्चात् पत्र पढ़ हंसते हुए बोले, “खिल-वाड़ है ।”

कमल—बस, मालूम हो गया । इसी अक्ल पर मन्त्री का काय होगा ? आज तुम्हें ‘डिसचार्ज’ करूंगी । छाती पर पत्थर रखकर, अपनी वेदना को छिपाकर ही ऐसा कर सकती हूँ । सूर्य का दुर्भाग्य !

कमल की सम्मति से श्रीश ने नगेन्द्र को व्यंग्य-भरा एक पत्र

भेजा। उत्तर में नगेन्द्र ने लिखा, “ भाई ! मुझे घृणा न करो। पर ऐसा भी क्यों कहूं ? जो घृणा के योग्य होगा, उसे लोग घृणा करेंगे ही। तुम भी करो तो आश्चर्य क्या है ? पर मैं विवाह अवश्य करूंगा—समस्त संसार विरोध करे, तो भी। विवाह न होने पर मैं पागल हो जाऊंगा। यदि कोई विधवा-विवाह को शास्त्र-विरुद्ध बतावे तो उसे विद्यासागर का निबंध पढ़ने का अनुरोध करूंगा। यदि कहो कि शास्त्र-सम्मत होने पर भी ऐसा करने से समाजच्युत होने का भय है, तो मैं कहता हूं कि इस गोविन्दपुर में ऐसा कौन है जा मुझे समाज से बहिष्कृत करेगा ?

“ कह सकते हो, एकसाथ दो विवाह करना नीति-विरुद्ध है। पर यह अंग्रेजों का सिद्धांत है। भारत में कभी इसको नहीं स्वीकार किया गया। कह सकते हो कि दो विवाह करने में गृहकलह की संभावना है ; पर मैं निःसन्तान हूं। मेरी मृत्यु के बाद वंश-नाश की जो संभावना है वह विवाह से दूर हो जाएगी।

“ अंतिम आपत्ति सूर्य के लिए कर सकते हो कि प्रेमपरायणा पत्नी के हृदय में सौत का कांटा क्यों गड़ाते हो, पर इस विवाह में सूर्य की असम्मति नहीं है। उसने ही विवाह की चर्चा चलाकर मुझे विवाह के लिए तैयार किया है। बड़े उत्साह से वह इसका सब प्रबंध कर रही है। तब मेरा विवाह क्यों निन्द्य है ?”

कमल ने पत्र पढ़कर कहा, “बड़ी भारी भूल हुई है। पुरुषों की श्रवण धीरे-धीरे नष्ट हो रही है। हमें गोविन्दपुर जाना होगा।”

श्रीशचन्द्र—क्या जाकर विवाह रोक दोगी ?

कमल—रोकने में असमर्थ रही तो प्राण-त्याग करूंगी।

श्रीशचन्द्र—चुप ! यह तुमसे नहीं होगा। हां, अपनी नई भौजाई की नाक काट ला सकती हो।

दूसरे दिन चलकर दोनों यथासमय गोविन्दपुर पहुंच गए। कमल ने व्यग्रतापूर्वक अंतःपुर में प्रवेश कर सेविकाओं से पूछा—

सूर्य कहाँ है ? उन्होंने शयनागार की ओर इशारा कर दिया । वहाँ जाकर कमल ने कोने में नीचा मुंह किए एक स्त्री को देखा । समझ गई—सूर्यमुखी है । आहट पा सूर्य कमल के पास आई । उसकी पसलियों पर मांस का नाम नहीं है ; देह का स्वर्ण-सा रंग विवर्ण हो गया है, मुंह मुरझा गया है, आंखें भीतर धंस गई हैं । समझते देर न लगी कि विवाह हो गया । पूछा, “कब हुआ !” सूर्य ने वेदना-भरे स्वर में कहा, “कल ।” फिर कमल की गोद में मुंह छिपा रोने लगी ।

इसी समय नगेन्द्र बैठक में बैठे सोच रहे थे, ‘कुन्द ! मेरी कुन्द ! कुन्द, कुन्द ! कुन्द मेरी है ।’ इस विचार में डूबे श्रीशबाबू से अच्छी तरह बात भी न कर सके । मन में स्थिर किया, ‘जब स्वयं सूर्य ने उससे मेरा विवाह कर दिया है, तब किसे आपत्ति होगी ?’

संयत होने पर संध्या समय सूर्य ने नगेन्द्र और कुन्द का सब हाल कमल से कह सुनाया । कमल ने चकित होकर पूछा, “तूने विवाह के लिए उद्योग करके अपने ही पांव में क्यों कुल्हाड़ी मारी ?”

सूर्य बोली, “मैं कौन हूँ कमल ! एक बार जाकर अपने भाई का प्रफुल्ल मुखकमल देख आओ तब समझोगी कि आज वे कितने सुखी हैं । उनको अपनी आंखों से सुखी देखने से अधिक मेरे जीवन की सार्थकता और क्या है ? इससे अधिक मुझे क्या चाहिए ? जिसको ज़रा-सा उदास देखकर कलेजा फटने लगता है, जब उन्हींको रात-दिन मार्मिक पीड़ा से विकल देखा, जब देखा उनका दुःख असह्य हो रहा है और पागल की तरह सब सुविधाओं पर लात मार वे गांव छोड़ने को तैयार हैं, तब मैंने उनका विवाह कराके क्या बुरा किया ? सब कुछ समझकर मैंने उनसे कहा, ‘प्रभु ! आपका सुख ही मेरा सुख है । आप कुन्द से विवाह कीजिए, मैं सुखी हूंगी ।’ मेरी सम्मति पाकर उन्होंने ऐसा किया ।”

कमल—तुम्हें इस विवाह से क्या सुख हुआ ?

सूर्यमुखी—मेरी बात क्या पूछती हो बहिन ? मैं कौन हूँ ? जब कभी स्वामी के पैर में कांटा चुभा देखा है, तब यही इच्छा हुई है कि मैंने वहाँ अपना कलेजा क्यों नहीं बिछा दिया—स्वामी मेरे कलेजे पर पांव रखकर चलते ।

इतना कहते-कहते सूर्य की आंखें भर आईं । थोड़ी देर बाद आंखें पोंछकर बोली, “कमल ! वह कौन-सा देश है, जहाँ पैदा होते ही लोग लड़कियों को मार डालते हैं ?”

कमल ने कहा, “लड़की होने से ही कुछ थोड़े होता है । भाग्या-नुसार ही कर्मभोग देखती हूँ ।”

सूर्यमुखी—यह बात नहीं है । मेरे भाग्य से अधिक सुन्दर और किसका भाग्य होगा ? ऐसे स्वामी किसके हैं, इतने गुण किसके स्वामी में हैं ? तुम्हारी बात ठीक हो तो मुझपर यह विपत्ति क्यों ?

कमल—यह भी तो भाग्य ही है ।

सूर्यमुखी—तब इसकी ज्वाला से हृदय क्यों जलता है ?

कमल—कुछ देर पहले तुमने कहा कि मैं स्वामी का खिले कमल-सा मुँह देखकर सुखी हूँ, अब कहती हो कि इसकी ज्वाला से हृदय क्यों जलता है । क्या दोनों बातें हो सकती हैं ?

सूर्यमुखी—हां बहिन ! ऐसा ही है । दोनों ही बातें सत्य हैं । मैं उनके सुख से सुखी हूँ, किन्तु मुझे उन्होंने पैर से ठुकरा दिया और मुझे ठुकराकर वे प्रसन्न हैं...

सूर्य आगे कुछ न कह सकी । उसका गला भर आया । आंसू बहने लगे । कमल बोली, “तुम्हें उन्होंने ठुकरा दिया है इसीलिए तुम्हें अंतर्दाह हो रहा है । तब कैसे कहती थीं कि मैं कौन हूँ ? अभी हृदय में ममता है अन्यथा पूर्ण आत्मविसर्जन के बाद अनुताप क्यों होता ?”

सूर्यमुखी—अनुताप नहीं बहिन ! मुझे इसमें ज़रा भी संदेह नहीं कि मैंने जो किया ठीक किया, किन्तु मृत्यु की यंत्रणा तो भोगनी ही पड़ेगी । अपनी मृत्यु श्रेयस्कर समझ जान-बूझकर मरने का उपाय

किया है, किन्तु क्या इतने से ही मरते समय मैं तुम्हारे सम्मुख होऊंगी नहीं ?

इतना कह सूर्य कमल की गोद में सिर छिपा रोने लगी । कमल उसके सिर पर चुपचाप हाथ फेरने लगी । उसकी आंखों से भी आंसू गिरने लगे । रात अधिक बीत जाने पर सूर्य ने कमल का प्रेमपूर्वक आलिंगन किया, फिर सतीश को गोद में लेकर उसका मुंह चूमा । विदा होते समय फिर सूर्य की आंखों से आंसू वह चले । किसी तरह आवेग रोककर सतीश को आशीर्वाद दिया, “तू अपने मामा के समान अशेष गुणों का अधिकारी हो । इससे बड़ा आशीर्वाद मेरे पास नहीं है ।”

सूर्य ने मृदु स्वर में आशीर्वाद दिया था, पर उसके कण्ठ-स्वर से चौंककर कमल ने पूछा, “भौजी ! तुम्हारे मन में क्या है ? मुझसे भी छिपाओगी ?”

“ऐसी कोई बात नहीं जो तुमसे छिपाऊं वहिन !”

कमल को सूर्य पर विश्वास था इसलिए निश्चिन्त होकर वह सोने चली गई । सवेरे उसके कमरे में जाकर कमल ने देखा कि वहां सूर्य नहीं है । एक पत्र पड़ा है । पत्र देखते ही उसका माथा ठनका । एक मिनट में सब समझ गई । रोकर बोली, “मैं पगली सोने जाते समय समझकर भी न समझ सकी ।” मां को रोते देख सतीश भी रोने लगा ।

दुःख का आवेग कम होने पर कमल ने पत्र खोला । उसीके नाम था :

“जिस दिन स्वामी के मुंह से सुना कि ‘अब तुमसे मुझे किसी प्रकार का सुख नहीं मिलता है ; मैं कुन्द के लिए पागल बनूंगा या प्राण दे दूंगा,’ उसी दिन मैंने संकल्प किया कि कुन्द के मिलते ही उसके हाथ में स्वामी को सौंपकर मैं इस घर से चली जाऊंगी । कुन्द मिल गई, उसके हाथ स्वामी को सौंप दिया । मेरा संकल्प

पूरा हो गया। अब यह घर छोड़कर जा रही हूँ।

“विवाह के बाद कल रात ही चली जाती, परन्तु स्वामी के जिस सुख की कामना के लिए अपना सर्वनाश किया, उस सुख को अपनी आंखों देखकर जाने की इच्छा थी और तुम्हें भी एक बार देखने का मन था। मेरी दोनों कामनाएं पूरी हो गईं। जो मेरे प्राणों से भी अधिक प्रिय है, वे सुखी हुए, इसे मेरी आंखों ने देख लिया। अब तुमसे विदा मांगती हूँ।

“जिस समय तुम्हें यह पत्र मिलेगा, उस समय तक मैं बहुत दूर निकल जाऊंगी। तुमसे बिना कहे जाने का कारण यही है कि तुम मुझे कहीं जाने न देतीं। मेरी खोज न करना। अब तुमसे भेंट होने की संभावना नहीं है। इधर आकर स्वामी के सुख में कांटा बनने की चेष्टा नहीं करूंगी। मेरा पता भी तुम न पा सकोगी। भिखारिणी बनकर चारों ओर घूमूंगी और भीख मांगकर दिन बिताऊंगी। यदि चाहती तो रुपये-पैसे ले सकती थी, किन्तु इच्छा नहीं हुई। संसार में मेरा जो परमाराध्य है, जब वही छूट रहा है तब रुपये-पैसे की जरूरत क्या?

“मेरा एक काम कर देना। मेरी ओर से स्वामी के चरणों में कोटि-कोटि प्रणाम कहना। मैंने बड़ी चेष्टा की कि उनके नाम भी एक पत्र लिख जाऊँ, पर न लिख सकी। लिखने की चेष्टा करते ही आंखों से आंसू टपककर कागज खराब कर देते। फिर उनसे जो कुछ कहना है वह एक क्या हजारों पत्रों में नहीं लिख सकती। उनसे कह भी नहीं सकती। जैसे ठीक समझना मेरा प्रणाम कह देना। उन्हें यह भी समझा देना कि मैं उनपर क्रोध करके नहीं जा रही हूँ। उनपर मेरा क्रोध नहीं है। न तो आज तक किया है, न करूंगी। जिनके स्मरण-मात्र से हृदय आनन्द से विह्वल हो जाता हो, उनपर भी क्या कभी क्रोध हो सकता है?

“तुमसे भी सदा के लिए विदा होती हूँ। आशीर्वाद देती हूँ कि तुम्हारे स्वामी और पुत्र दीर्घजीवी हों। तुम सदा सुहागिन रहो।”

जिस विष-वृक्ष की व्याख्या का काम मैंने हाथ में लिया है, वह

सभी के घर सूक्ष्मबीज-रूप में विद्यमान है। कोई ऐसा मनुष्य नहीं जिसका हृदय राग, द्वेष, काम, क्रोध आदि से रहित हो। ज्ञानी मनुष्य भी समय पर इनसे विचलित हो जाते हैं। ज्ञानी और अज्ञानी में इतना ही अन्तर है कि ज्ञानी जन अपनी चंचल मनोवृत्तियों को संयत कर सकते हैं, साधारण प्राणी उन्हें संयत नहीं कर सकते; अतः उन्हीं के लिए यह विष-वृक्ष अंकुरित, वर्द्धित, पल्लवित, पुष्पित और फलित होता है। चित्त के संयम के अभाव से ही इसकी वृद्धि होती है। एक बार जड़ पकड़ लेने पर शीघ्र इसका नाश नहीं होता। ऊपर से सुन्दर लगता है किन्तु इसका फल विषाक्त होता है। जो खाता है उसीका मन जानता है।

क्षेत्र और पात्रानुसार विष-वृक्ष में रोग, दुःखादि अनेक प्रकार के फल लगते हैं। चित्त-संयम के लिए पहले उसकी ओर प्रवृत्ति होनी चाहिए, फिर उसके लिए शक्ति भी अपेक्षित है। शक्ति प्रवृत्ति से होती है और प्रवृत्ति शिक्षा पर निर्भर है। चित्त-संयम में वस्तुतः शिक्षा ही प्रधान है। गुरु का उपदेश ही शिक्षा नहीं है; अन्तःकरण में दुःख-भोग ही प्रधान शिक्षा है। नगेन्द्र ने ऐसी शिक्षा नहीं पाई थी। ईश्वर ने उन्हें सब सुख दिया था। सुन्दर रूप, अखण्ड ऐश्वर्य, स्वस्थ शरीर, सर्वतोमुखी प्रतिभा, सुशील चरित्र, स्नेहमयी साध्वी पत्नी—ये सब बातें एक मनुष्य के भाग्य में नहीं रहतीं, किन्तु नगेन्द्र को सब प्राप्त थीं। वे अपने स्वभाव के कारण सुखी थे। सत्यवादी होने पर भी कभी अप्रिय वचन नहीं बोलते थे। परोपकारी और दयालु होकर भी न्याय में उनकी निष्ठा थी। वे एक-साथ ही दाता और मितव्ययी थे। स्नेहशील होने पर भी कर्तव्य-निष्ठ थे। माता-पिता के जीवन-भर उनपर श्रद्धा करते रहे। पत्नी के प्रति अगाध प्रेम था। मित्रों के हितैषी, नौकरों के लिए दयालु और अनुगत जनों के पालनकर्ता थे। ऐसे चरित्र का स्वाभाविक पुरस्कार अविच्छिन्न सुख है वह उन्हें बचपन से ही मिला था। परन्तु सृष्टि का नियम है कि जो जितना ही सुखी होता है, उसे उतना ही दुःख भी भोगना पड़ता है।

कुन्द को देखने के पहले नगेन्द्र ने कभी लोभ नहीं किया ; उन्हें किसी चीज़ का अभाव नहीं था । अभाव न होने के कारण लोभ-संवरण के लिए जिस मानसिक अभ्यास अथवा शिक्षा की आवश्यकता होती है वह उनमें नहीं थी इसीलिए चित्त-संयम की चेष्टा करके भी वे उसमें सफल नहीं हो सके । सांसारिक सुख दुःख का मूल है । पूर्वगामी दुःख के बिना स्थायी सुख असंभव है । इस बात का यह अर्थ नहीं कि नगेन्द्र दोषी नहीं हैं । उनका दोष गुस्तर है, अतः प्रायश्चित्त भी गुस्तर आरम्भ हुआ ।

सूर्य के चले जाने से घर में हाहाकार मच गया । नगेन्द्र, श्रीश और कमल ने अलग-अलग खोज में आदमी भेजे । जिसने सुना वही दौड़ पड़ा ।

श्रीश ने नगेन्द्र और कमल को अनेक प्रकार से आश्वासन देना आरम्भ किया । कहा, “उन्हें पैदल चलने का अभ्यास नहीं है; रास्ता भी जाना हुआ नहीं है । ऐसी हालत में वे कितनी दूर गई होंगी ! कोस आध कोस के अन्दर ही होंगी । थोड़ी देर में पता लग जाएगा । घबराने की बात नहीं है ।” परन्तु जब दो-तीन घण्टे में भी कोई समाचार नहीं मिला, तो नगेन्द्र स्वयं खोजने निकले । कुछ देर खोजने के बाद यह सोचकर कि कहीं लोग खोजकर लाए न हों, घर लौटे, पर वहां उसे न देख उदासचित्त से फिर खोजने निकले । फिर पहले की तरह सोचकर लौटे, किन्तु सूर्य को न देख फिर गए । इसी तरह सारा दिन बीत गया ।

श्रीश का अनुमान ठीक था । सूर्यमुखी कभी पैदल न चली थीं इसलिए आध-कोस जाते-जाते थककर तालाब के सन्निकट आम के एक बगीचे में सो गई थीं । खोजते-खोजते रसोइया उधर जा निकला और उन्हें देखकर घर लौटने का अनुरोध करने लगा । सूर्यमुखी ने कहा, “तू यहां से न जाएगा तो मैं तालाब में कूदकर जान दे दूंगी ।” वह डरकर चला गया और नगेन्द्र से सब हाल

जाकर कहा । नगेन्द्र तुरन्त पालकी लेकर वहां आए, पर सूर्य न मिली । वह वहां से हटकर एक वन में जा बैठी थी ।

दिन बीता, रात बीती । दूसरा-तीसरा दिन भी बीत गया, परन्तु सूर्य की कुछ खबर न लगी ।

श्रीश अधिक दिन नहीं टहर सके । उन्होंने कलकत्ता जाकर अनुसंधान आरम्भ किया । कमल गोविन्दपुर में ही रहकर खोज करने लगी ।

कुन्द को आशातीत सुख मिला । जिस दिन ब्याह हुआ, कुन्द ने सोचा—इस सुख की कोई सीमा नहीं है । इसके बाद सूर्य के चले जाने पर दुःखी हो सोचा, 'वह मेरी रक्षक थी ; उसने यदि समय पर मुझे आश्रय न दिया होता, तो मैं कहां जाती ? वह मेरे लिए घर छोड़कर चली गई । इस सुख से तो मृत्यु ही श्रेयस्कर है ।'

सन्ध्या के बाद नगेन्द्र उदास शय्या पर लेटे हैं । कुन्द सिरहाने बैठकर पंखा भल रही है । दोनों चुप हैं । एकान्त में भी दम्पती-युगल में चुप्पी चिन्ता और दुःख का ही परिचय देती है । जब से सूर्य गई है, तब से क्या ये लोग सुखी हैं ? कुन्द प्रायः सोचती है, 'क्या करूं जिससे पहले की तरह हो जाऊं ?' इस समय भी नगेन्द्र की विरक्ति देख वह यही सोच रही थी । सोचते-सोचते पूछा, "क्या कोई ऐसा उपाय है जिससे मैं पहले की तरह हो जाऊं ?"

नगेन्द्र चौंके, पर उदासीनतापूर्वक बोले, "क्या मेरे साथ विवाह होने का तुम्हें दुःख है ?"

कुन्द के कलेजे पर चोट लगी । व्यथा स्वर में बोली, "विवाह की बात मैं नहीं कहती । इससे मुझे जितना सुख हुआ है, उतने की मैंने कभी आशा न की थी । मैं पूछती थी कि क्या करने से सूर्य लौटेगी ?"

नगेन्द्र ने कहा, "तुम सूर्य का नाम लेने की अधिकारिणी

नहीं हो कुन्द ! तुम्हारे ही कारण वह घर छोड़कर चली गई है । तुम्हारे मुख से वह पवित्र नाम सुनकर कलेजा फटने लगता है ।”

नगेन्द्र का स्वर सुनकर कुन्द मर्माहत हुई । सोचा, ‘मेरा तिरस्कार क्यों ? मैंने तो कोई अपराध नहीं किया । सूर्य ने तो जबर्दस्ती स्वेच्छा से मेरा विवाह किया ।’ कुन्द को देर तक चुप देख नगेन्द्र ने पूछा, “क्या नाराज हो गई ?”

कुन्द ने उत्तर दिया, “नहीं ।”

नगेन्द्र—इस ज़रा से ‘नहीं’ से कैसे काम चलेगा ? क्या अब तुम मुझे प्यार नहीं करती ?

कुन्द—क्यों नहीं करती ?

नगेन्द्र—यह तो लड़कों का भुलावा है । कदाचित् तुमने मुझे प्यार नहीं किया ।

कुन्द—कहने का तुम्हें अधिकार है, पर मैं अविदवासिनी नहीं हूँ ।

नगेन्द्र कुन्द और सूर्य का भेद समझ सके । कुन्द के हृदय में सूर्य से कम प्रेम नहीं था, किन्तु वह बालिका और नवविवाहिता होने के कारण अधिक लजीली थी । बहुत बोलना उसे न आता था । फिर बेचारी कहती भी क्या ! चुप हो रही । नगेन्द्र कुन्द का हृदय पहचान न सके । बोले, “सूर्य सदा मुझे प्यार करती थी । बन्दर के गले में मोतियों का हार पड़ गया है ; लोहे की सिकड़ी ही उसके लिए अच्छी होती है ।”

बहुत चेष्टा करके भी इस बार कुन्द आंसू न रोक सकी । उठकर बाहर चली गई । कोई उसके प्रति सहानुभूति रखनेवाला न था, जिसके पास बैठकर जी-भर रो लेती । इतने दिनों से कमल के पास भी वह नहीं गई थी, क्योंकि इस विवाह के विषय में वह अपने को ही प्रधान अपराधिनी समझे हुए थी, किन्तु आज जब आन्तरिक वेदना से कलेजा फटने लगा तब उसके पास जाने का विचार किया । उसके पास गई ; किन्तु कमल ने भी आज उसका स्वागत नहीं किया । बोली भी नहीं । कुन्द उसके पास बैठकर रोने लगी ; पर कमल ने इतना भी नहीं पूछा कि क्या हुआ । वह थोड़ी

देर बाद 'काम है' कहकर चली गई।

कुन्द के रोम-रोम से वेदना की झंकार होने लगी, 'सभी सुखों की सीमा है।'

[नगेन्द्र का पत्र हरदेव घोपाल के नाम]

“तुम्हारी बात मानता हूँ कि कुन्द के साथ विवाह करके मैंने जीवन में सबसे बड़ी गलती की है। ऐसा करके ही हमने सूर्य को फेंक दिया। उसके समान स्त्री का मिलना बड़े सौभाग्य का फल है। कितने ही मनुष्य जमीन खोदकर रत्न निकालने की चेष्टा करते हैं, पर 'कोहनूर' सबको नहीं मिलता। मेरी सूर्य 'कोहनूर' ही थी। कुन्द में क्या है जो वह सूर्य का स्थान प्राप्त करेगी ?

“प्रश्न करोगे कि तब क्यों ऐसा किया ? इससे पहले ही स्वीकार कर चुका हूँ कि भूल से। कुन्द से विवाह करके मैंने बड़ा भारी अपराध किया है। अब समझ में आया है। पर हाय ! अब सूर्य कहां मिलेगी ?

“मैंने कुन्द से क्यों व्याह किया ? क्या उससे प्रेम करता था ? प्रेम क्यों नहीं करता था ? उसके लिए तो पागल हो उठा था, किन्तु जान पड़ता है, वह केवल आंखों का प्रेम था अन्यथा विवाह के पन्द्रह दिनों बाद ही 'क्या उससे प्रेम करता था ?' ऐसा संदेह-भरा प्रश्न क्यों करता ! प्रेम करता था क्या, अब भी करता हूँ। किन्तु हाय मेरी सूर्य न जाने कहां चली गई ?

“और भी कुछ लिखने की इच्छा थी पर बड़ी वेदना हो रही है। आज अधिक नहीं।

तुम्हारा
नगेन्द्र।”

[नगेन्द्र के पत्र का उत्तर]

“मैं तुम्हारे मन का भाव समझ गया। कुन्द को तुमने प्यार

किया था और आज भी करते हो, किन्तु यह तुमने ठीक लिखा कि वह प्रेम आंखों का है। सूर्य के ऊपर तुम्हारा जो अगाध प्रेम था वह दो दिनों के लिए कुन्द की छाया से ढक गया था। सूर्यमुखी चली गई, तब तुमने उसका मूल्य समझा है। सूर्य के प्रखर प्रकाश से हम शीतलता और शान्ति का अनुभव नहीं करते। दिन में जब कभी बदली हो जाती है तब अच्छा मालूम होता है, पर सूर्य के डूबने के बाद यह अनुभव होता है कि संसार का सारा काम-काज, उत्साह उसपर ही निर्भर है। उसकी अनुपस्थिति से ही घोर अंधकार की सृष्टि होती है।

“तुम अपने हृदय के भाव ठीक-ठीक समझ नहीं सके थे, इसी-लिए तुमने इतनी बड़ी भूल की। इसके लिए तुम्हारा तिरस्कार नहीं करूंगा, क्योंकि तुम्हारा भ्रम अपने-आप दूर हो गया है। मन के कितने ही भाव ऐसे हैं जिनको लोग प्रेम के नाम से पुकारते हैं, किन्तु जिस अवस्था में दूसरे के सुख के लिए हम लोग आत्मसुख का विसर्जन कर देते हैं वही वस्तुतः प्रेम है। निःस्वार्थ भाव से किसी कार्य की प्रवृत्ति ही प्रेम है। इस कसौटी पर जांच करके जानोगे कि सुन्दरी रमणियों के सौन्दर्य-भोग की लालसा प्रेम नहीं है। जिस प्रकार क्षुधातुर की क्षुधा को अन्न के प्रति प्रेम नहीं कह सकते, उसी प्रकार कामातुर के चित्त की चंचलता को सुन्दरियों के प्रति प्रेम नहीं कहा जा सकता। ऐसे चित्तचांचल्य का ही नाम कवियों ने ‘मदनशर’ या ‘मदनशरज’ रखा है। जिस कल्पित वृत्ति से प्रतारित होकर पसंत की सहायता पा कामदेव ने शिव का ध्यान भंग करने का उपक्रम किया था, जिसकी शक्ति के वशीभूत होकर शंकर मोहिनी रूप के पीछे दौड़े थे, वह सब रूपज मोह-मात्र था। यह प्रवृत्ति जीव-मात्र में स्वाभाविक और जगदीश्वर द्वारा प्रेरित है। इससे भी संसार की भलाई होती है। कालिदास, वायसन और जयदेव इसी प्रवृत्ति के कवि हैं। विद्यापति इसके प्रचारक थे। किन्तु वस्तुतः यह प्रणय नहीं है। प्रेम बुद्धिमूलक है। जिस समय प्रियतम के गुण बुद्धिवृत्ति द्वारा गृहीत होते हैं और हृदय उन गुणों के आकर्षण से मुग्ध हो उसके प्रति-संचालित और समाविष्ट होता है, तब सदैव उस

गुणाधार के साथ रहने की इच्छा और उसके प्रति प्रेम वा भक्ति का उदय होता है। इसका स्वरूप सहृदयता और परिणाम, आत्म-विस्मृति या आत्मविसर्जन है, जिसके विकास के लिए बड़े-बड़े योगी-यती सतत चेष्टा किया करते हैं। यही यथार्थ प्रणय है। शेक्सपियर, वाल्मीकि और श्रीमद्भागवतकार व्यास इसके कवि हैं। यह रूपजन्य नहीं है।

“इस विशुद्ध प्रणय में प्रेमी पहले बुद्धि के द्वारा प्रियतम के गुणों को ग्रहण करता है। गुण-ग्रहण के बाद सान्निध्य की इच्छा होती है। उसमें सफलता होने पर प्रणय और गम्भीर हो जाता है। इस प्रणय से ही आत्मविसर्जन होता है। यही वास्तविक प्रेम है। स्त्री-पुरुष में इस प्रकार का प्रेम सरलता से हो सकता है। बुद्धिवृत्तिमूलक प्रेम स्थायी किया जा सकता है। रूपज मोह में यह बात नहीं है। रूपदर्शन के पश्चात् चित्तवृत्तियों की तीक्ष्णता धीरे-धीरे कम होने लगती है; ज्यों-ज्यों समय बीतता जाता है उसे देखने की इच्छा कम होती जाती है। गुण के कारण उत्पन्न प्रेम की ओर से मन इस प्रकार नहीं हटता। रूप एक है; प्रतिदिन एक ही प्रकार से देखा जाता है। जैसा रूप कल था, आज भी प्रायः वैसा ही रहता है किन्तु गुण नूतन क्रियाओं के कारण नित्य नया बना रहता है। रूप से भी शुद्ध प्रेम या प्रणय की उत्पत्ति होती है, यह मैं मानता हूँ, क्योंकि इसमें भी दोनों के हृदय में एकत्र रहने की इच्छा होती है। यदि दोनों एकत्र रहकर भी संयम कर सकें तो निश्चय रूपज मोह भी शुद्ध प्रणय में परिवर्तित हो सकता है, किन्तु संसर्ग के कारण एक बार जब यह प्रणय बद्धमूल हो जाता है, तब रूप रहे या न रहे, दोनों बराबर हैं। रूपवान और कुत्सित दोनों के ही प्रति प्रेम होना संसार में प्रायः देखा जाता है।

“गुण के कारण उत्पन्न प्रणय चिरस्थायी होता है जरूर, किन्तु गुण पहचानने में देर लगती है। इसीलिए ऐसा प्रणय आरम्भ में ही विकसित नहीं हो जाता, वरन् धीरे-धीरे भीतर ही भीतर बढ़ता है। रूपजन्य मोह क्षणमात्र में बलवान हो जाता है। आरम्भ में यह इतना बलवान होता है कि अन्य सभी वृत्तियाँ इससे परास्त एवं छिन्न-

भिन्न हो जाती हैं । यह समझने की शक्ति भी क्षीण हो जाती है कि यह मोह है या प्रणय । ऐसी अनिश्चित अवस्था में मनुष्य प्रायः भूल करता है । वह समझता है कि मेरा प्रेम स्थायी है । तुम्हें भी ऐसा ही हुआ । सूर्यमुखी के प्रति जो प्रेम था वह मोह के आरंभिक दुर्दमनीय बल से छिप गया था । यह तुम्हारी भूल थी, पर ऐसी भूल होनी स्वाभाविक है इसलिए मैं तुम्हारी भर्त्सना नहीं करूंगा । मेरी तो यह सम्मति है कि अब कुन्द में ही प्रणय का बीज आरोपित करके सुखी होने की चेष्टा करो ।

“ निराश होने की आवश्यकता नहीं । सूर्य अवश्य लौटेगी । तुम्हें देखे बिना वह अधिक दिन तक कहीं नहीं रह सकती । जब तक वह नहीं है तब तक कुन्द को ही स्नेह करो । तुम्हारे पत्रों से मैंने समझा है कि यह भी गुणहीन नहीं है । इसके प्रति तुम्हें जो रूपज मोह हुआ था वह दिन-दिन मिटता जा रहा है । इस मोह के दूर हो जाने पर उसके स्थायी प्रेम का संचार होगा । उस समय तुम कुन्द से ही सुखी हो सकोगे और यदि सूर्य न मिली तो उसे कुन्द के प्रेम में भूल भी जा सकते हो । उसके भूलने का एक यह भी बड़ा कारण है कि तुम्हारी कुन्द तुम्हें बहुत प्यार करती है । उसमें त्याग का भी बीज विद्यमान है, अतएव तुम्हें प्यार करने और तुम्हारा मंगल-साधन करने में वह कभी त्रुटि न करेगी । एकमात्र प्रेम से ही मनुष्य को निर्मल और अविनश्वर सुख की प्राप्ति होती है । प्रेम ही मानव-जाति की उन्नति का अन्तिम उपाय है ।

तुम्हारा
हरदेव ”

[नगेन्द्र का प्रत्युत्तर]

“तुम्हारा पत्र बहुत पहले मिल गया था, किन्तु मानसिक वेदना के कारण उत्तर देने में देर हुई । तुम्हारी सब बातें समझ गया । तुम्हारा ही परामर्श सत्परामर्श और अनुकरणीय है, इसे भी स्वीकार करता हूँ ; किन्तु घर पर रहकर अब अपने मन को स्थिर करने में मैं असमर्थ हूँ । सूर्य को गए एक मास से अधिक हो गया, किन्तु

अब तक कुछ भी समाचार न मिला। वह जिस मार्ग पर गई है, मैंने भी उसी मार्ग पर जाने का संकल्प किया है। यह घर छोड़ देश-विदेश में उसकी खोज करूंगा। पा गया तो लेकर घर लौटूंगा अन्यथा नहीं। कुन्द के साथ रहने में असमर्थ हूं। वह मेरी आंखों में कांटों के समान खटकती है। उसका दोष नहीं, दोष मेरा है ; किन्तु न जाने क्यों उसके साथ रहने को जी नहीं करता। पहले उसे कुछ नहीं कहता था, किन्तु अब उस निरपराधिनी को, बिना गलती किए ही, तिरस्कार और डांट-डपट दिया करता हूं। बेचारी रोती है, पर मैं क्या करूं ? मेरे मन की अवस्था ठीक नहीं है। तुमसे भेंट करके तब दूसरी जगह जाऊंगा। बस।

तुम्हारा
नगेन्द्र ”

नगेन्द्र ने अपना निश्चय शीघ्र ही कार्यरूप में परिणत किया। जमींदारी की देखभाल का काम दीवान को सौंपकर कहीं चले गए। कमल पहले ही कलकत्ता चली गई थी, अतएव कुन्द अकेली ही दत्तगृह में रह गई। हीरा उसकी सेवा करने लगी।

ऐश्वर्य-प्रदीप्त दत्तगृह अंधेरा हो गया। जिस प्रकार बालक सुन्दर चित्र के साथ एकाध दिन खेल चुकने के बाद उसे चीर-फाड़कर फेंक देता है, उसी प्रकार कुन्द भी नगेन्द्र से परित्यक्त हो गई।

दावानल का प्रसार होने के पूर्व ही जो पक्षी अपने बच्चों के लिए खाने की सामग्री लाने वन से दूर चले जाते हैं, वे लौटने पर यह देखकर कि वह स्थान नहीं, वह वृक्ष नहीं, बच्चे नहीं, जिस प्रकार कातर होकर आंसू बहाते इधर-उधर देखते हैं, उसी प्रकार नगेन्द्र भी सूर्य के लिए व्याकुल हो चारों ओर घूमने लगे।

रुई के ढेर में पड़े हुए अंगार की भांति देवेन्द्र की मूर्ति हीरा के हृदय को जला रही थी। अनेक बार सुन्दरी हीरा की धर्म-

भीरुता और लज्जा प्रणय-प्रवाह में बहने-बहने को हो गई, किन्तु देवेन्द्र के प्रेमहीन, इन्द्रियपरायण स्वभाव का स्मरण करके उसने संयम किया। चित्त-संयम की क्षमता से ही वियोग की अग्नि में जलती हुई भी वह सतीत्व की रक्षा करने में समर्थ हुई। उसने निश्चय किया कि फिर दासी-कर्म करूंगी और काम-धंधे में निरन्तर लगे रहने से विफल प्रेम की प्रज्वलित ज्वाला को मैं बर्दाश्त कर सकूंगी। घर छोड़कर जाते समय हीरा की प्रार्थना पर नगेन्द्र उसे पुनः नियुक्त कर गए थे और वह कुन्द की सेवा में लग गई थी।

हीरा ने पहले समझा था कि कुन्द जब नगेन्द्र की पत्नी होगी, तो सारा धन उसके ही अधिकार में रहेगा, इसलिए कुन्द से बहुत मेल-जोल रखती थी; किन्तु कुन्द का विवाह होने पर भी उसकी आशा पूरी न हुई। परन्तु अब उसका ध्यान धन की ओर न था।

अपने निष्फल प्रेम की वेदना किसी प्रकार मन मारकर हीरा सह रही थी, किन्तु देवेन्द्र का कुन्द के प्रति जो अनुराग था उसे वह नहीं सह सकती थी। नगेन्द्र के जाते ही उसे हरिदासी वैष्णवी के कृत्य याद आ गए। उसने यह भी समझ लिया कि जब नगेन्द्र नहीं हैं तब वैष्णवी को और भी मौका मिलेगा। इसीलिए वह कुन्द के पास बड़ी सावधानी से रहने लगी। वैसे दिल से वह कुन्द से नाराज थी, पर देवेन्द्र से उसकी भेंट न हो जाए, इसी बात को ध्यान रखकर वह कुन्द का इतना ख्याल रखती थी।

उधर हीरा के पूर्वव्यवहार में परिवर्तन देखकर कुन्द की वेदना बढ़ गई। उसने देखा कि उसमें उसके प्रति वह पहले जैसी ममता नहीं है, बल्कि समय-समय पर तिरस्कार भी करती रहती है। कुन्द शान्त स्वभाव की थी, इसलिए हीरा के व्यवहार से मर्माहत होकर भी उसे कुछ नहीं कहती। कुन्द नम्र थी, हीरा उग्र—इसीलिए कुन्द मालकिन होकर भी दासी के सामने दासी-सी लगती थी। पड़ोस की स्त्रियां कुन्द की यंत्रणा देख कभी-कभी हीरा को फटकारतीं, पर उसका उसपर कुछ भी प्रभाव न पड़ता था। दीवान ने सब हाल सुनकर हीरा को बुला भेजा और कहा, 'तू यहां से

निकल जा, मैं तुम्हे जवाब देता हूं।” हीरा क्रुद्ध होकर बोली, “तुम्हें जवाब देने का अधिकार क्या है ? मुझे स्वामी ने रखा है ; बिना उनके कहे मैं नहीं निकल सकती।” दीवान चुप हो गए। हीरा के व्यवहार में कुछ अन्तर नहीं हुआ।

एक दिन हीरा अन्तःपुर की बाटिका के लतामण्डप में सोई हुई थी। नगेन्द्र और सूर्य की अनुपस्थिति में इसपर हीरा ने अधिकार जमा लिया था। आकाश में बैठा चन्द्रमा अपने सौन्दर्य से जगत् को भिगो रहा है ; वायु में नशा है। हीरा लेटी हुई चांदनी की वर्षा देख रही थी। अकस्मात् उसके सामने एक पुरुष आकर खड़ा हो गया। हीरा ने देखा—देवेन्द्र हैं। अपने असली वेश में ही आए हैं।

हीरा ने आश्चर्य के साथ कहा, “आपने अच्छा नहीं किया। यदि किसीने देख लिया तो व्यर्थ लात खाएंगे।”

“हीरा के रहते इस बात का डर नहीं है।” कहकर देवेन्द्र हीरा के समीप बैठ गए। हीरा कृतार्थ होकर बोली, “जिसकी आशा में यहां आए हैं उससे भेट नहीं होगी।”

“तुम्हारे ही पास तो आया था।”

हीरा ऐसी भोली नहीं थी कि चाटुकारिता और कपट-भरी बातों पर मुग्ध हो जाती। हंसकर बोली, “मेरा ऐसा सौभाग्य है, इसे मैं नहीं जानती थी। यदि यह ठीक है तो ऐसे स्थान पर चलिए, जहां मैं भली भांति आपके दर्शन करके अपने मन को तृप्त कर सकूं। यहां तो अनेक विघ्न उपस्थित हो सकते हैं।”

देवेन्द्र ने पूछा, “कहां चलीगी ?”

हीरा—आप अपने उसी निकुञ्ज-वन में चलें। वहां किसी प्रकार का भय नहीं है।

देवेन्द्र—तुम मेरे लिए भय न करो।

हीरा—आपको डर नहीं पर मुझे तो है। आपके साथ किसीने मुझे देख लिया तो क्या कहेगा !

देवेन्द्र उदास होकर बोले, “अच्छा चलो। पर नई मालकिन के साथ दो-चार मिनट बात कर लेने में क्या तुम्हारी कुछ

हानि है ?”

इस बात ने हीरा के हृदय में ईर्ष्या की सहस्र-सहस्र ज्वालाएं प्रज्वलित कर दीं। पर कुछ संभलकर उसने कहा, “यह कैसे हो सकता है ?”

देवेन्द्र ने दीनता प्रकाशित करते हुए कहा, “तुम्हारी कृपा हो तो सब सम्भव है।”

हीरा—अच्छा, आप सावधान होकर बैठें ; मैं उन्हें यहीं बुला लाती हूं।

इतना कहकर हीरा मण्डप के बाहर निकली और कुछ दूर जाकर एक पेड़ की आड़ में बैठकर खूब रोई। इसके बाद दरबानों से जाकर कहा, “जल्द आओ, वाटिका में चोर घुस आया है।”

सुनते ही दुबे, तिवारी, पांडे सब बांस की लम्बी लाठियां लेकर दौड़े। देवेन्द्र उनके नागौरी जूतों के शब्द सुनकर तथा लम्बी लाठियों को दूर ही से देख मण्डप से कूदकर भागे। लठधारियों ने थोड़ी दूर तक उनका पीछा किया, फिर कुछ पुरस्कार देकर छोड़ दिया। देवेन्द्र ने घर पहुंचकर दो प्रतिज्ञाएं कीं—पहली यह कि हीरा के रहते उस मकान में कभी न जाऊंगा, दूसरी यह कि हीरा से इसका बदला अवश्य लूंगा।

बरसात के दिन हैं। आज दिन-भर पानी बरसता रहा, थोड़ी देर के लिए भी सूर्य नहीं दिखाई पड़ा। काशी जानेवाली पक्की सड़क के पासवाले रास्ते पर कीचड़ हो गया है। रास्ता प्रायः जनहीन है। केवल एक पथिक रास्ते से जा रहा है। पथिक ब्रह्मचारी वेश में, गेरुआ वस्त्र पहने हैं और गले में रुद्राक्ष, सिर में चन्दन सुशोभित है। एक हाथ में छाता, दूसरे में कमण्डलु है। भीगते चले जा रहे हैं। एक तो बदली, फिर रात हो गई है, फिर भी ब्रह्मचारी रुके नहीं। संसार-त्यागी ब्रह्मचारी को अंधकार, प्रकाश, सुपथ, कुपथ सब समान हैं।

रात ज्यादा बीत चुकी है। सर्वत्र अंधकार है। नन्ही-नन्ही बूंदें पड़ रही हैं। बीच-बीच में बिजली चमकती है। उससे और भयंकरता आ जाती है।

उस अंधकार में जाते हुए ब्रह्मचारी को अकस्मात् किसीके कराहने का शब्द सुनाई पड़ा। शब्द कोमल होने पर भी अतिशय व्यथापूर्ण था। वह शब्द सुनकर ब्रह्मचारी मार्ग में खड़े हो गए और बिजली चमकने की प्रतीक्षा करने लगे। थोड़ी देर बाद बिजली चमकी। उसके प्रकाश में पथिक ने देखा, रास्ते में कुछ पड़ा है। पथिक ने उसे मनुष्य समझा, किन्तु फिर एक बार बिजली चमकने की प्रतीक्षा की। दूसरी बार बिजली चमकने पर देखा कि मनुष्य ही है। तब पूछा, “तुम कौन हो जो यहां रास्ते में पड़े हो?”

कुछ जवाब न मिला। फिर पूछा। इस बार अस्फुट कातर स्वर सुनाई पड़ा। ब्रह्मचारी छाता और कमण्डलु वहीं जमीन पर रख अनाज-से इधर-उधर टटोलने लगे। एक कोमल मानव-देह का स्पर्श कर चौंक पड़े और बोले, “दुर्गे! यह तो कोई स्त्री जान पड़ती है।”

ब्रह्मचारी ने अचेत स्त्री को अपने दोनों हाथों से गोद में उठा लिया और रास्ता छोड़ उसी अंधकार में मैदान से होकर गांव की ओर चले। छाता और कमण्डलु वहीं पड़ा रहा। जान पड़ता है, रास्ता परिचित था।

गांव के किनारे ब्रह्मचारी की एक जानी हुई पर्णकुटी थी। दरवाजे पर पटुंचकर पुकारा, “बेटी हरिमणि! तू घर पर है?” कुटी के भीतर से आवाज सुनाई दी, “ये तो ब्रह्मचारीजी मालूम पड़ते हैं। ब्रह्मचारीजी! आप कब आए?” ब्रह्मचारीजी बोले, “अभी आया हूं। जल्द द्वार खोल, मैं बड़ी विपद् में हूं।” हरिमणि ने कुटी का द्वार खोल दिया। ब्रह्मचारी ने दिया जलाने को कह उस स्त्री को वहीं जमीन पर रख दिया। दिया आने पर दोनों उसे देखने लगे।

देखा—स्त्री बूढ़ी नहीं है। देह दुबली-पतली है और सांघातिक पीड़ा के लक्षण हैं। स्त्री पहले बड़ी सुन्दर रही होगी, पर इस

समय सुन्दरता का विशेष चिह्न नहीं है। जो गीला वस्त्र पहने है वह फटा और मैला है। बिखरे बाल रूखे हो चले हैं। आंखें धंस गई हैं। सांस चल रही है पर होश नहीं है। मृत्यु के दिन समीप हैं।

हरिमणि ने पूछा, “यह कहां मिली?”

ब्रह्मचारी ने संक्षेप में सब बताकर कहा, “देखने से मालूम होता है कि इसके मरने में अब देर नहीं है, परन्तु सेवा करने से बच भी सकती है। मैं जो-जो बताता चलूं, करती चलो।”

हरिमणि ने ब्रह्मचारी की आज्ञानुसार उसके गीले वस्त्र बदलकर सूखे वस्त्र पहना दिए। शरीर और बालों को सूखे कपड़े से पोंछ दिया; फिर आग जलाकर सेंकती रही। ब्रह्मचारी बोले, “जान पड़ता है कई दिनों से इसके पेट में आहार नहीं गया है। यदि घर में दूध हो तो थोड़ा-थोड़ा इसे पिलाने की कोशिश करो।”

हरिमणि के पास गाय थी। घर में दूध भी था। दूध गर्म कर थोड़ा-थोड़ा उस स्त्री को पिलाने लगी। थोड़ी देर में उसने आंखें खोल दीं। हरिमणि ने पूछा, “मां ! तुम कहां से आ रही हो?”

स्त्री ने पूछा, “मैं इस समय कहां हूं?”

ब्रह्मचारी ने कहा, “तुमको रास्ते में मरणोन्मुख दशा में पड़ी देख उठा लाया हूं। तुम कहां जाओगी?”

स्त्री ने कहा, “बहुत दूर।”

हरिमणि—तुम्हारे हाथ में चूड़ी है। क्या तुम सधवा हो?

पीड़ित स्त्री ने सिर हिलाकर स्वीकृति प्रकट की। हरिमणि दंग रह गई।

ब्रह्मचारी ने पूछा, “मां ! तुम्हें क्या कहकर पुकारूंगा? तुम्हारा नाम क्या है?”

अनाथिनी ने कुछ इधर-उधर करके कहा, “मेरा नाम सूर्य-मुखी है।”

सूर्यमुखी की गम्भीर अवस्था के कारण ब्रह्मचारी ने दूसरे दिन गांव के वैद्य को बुलवाया। रामकृष्ण राय वैद्यक के अच्छे विद्वान समझे जाते थे; बड़ी प्रसिद्धि प्राप्त की थी। परीक्षा करने के बाद वे बोले, “इसको खांसी है। ज्वर भी आ रहा है। रोग सांघातिक है, पर यत्नपूर्वक दवा होने से अच्छी भी हो सकती है।” ये बातें सूर्य के सामने नहीं हुईं। वैद्य ओषधि की व्यवस्था कर चले गए।

ब्रह्मचारी ने हरिमणि को किसी काम से बाहर भेज दिया और रोगिणी के पास आकर बैठ गए। सूर्यमुखी बोली, “महाराज ! आप मेरे लिए इतना यत्न क्यों कर रहे हैं ? मेरे लिए इतने कष्ट की जरूरत नहीं।”

ब्रह्मचारी—क्लेश कैसा ? मेरा तो यही काम है। मेरा अपना कोई नहीं है। ब्रह्मचारी हूं ; परोपकार ही मेरा धर्म है। आज तुम्हारी सेवा में न लगा होता तो किसी और रोगी की सेवा करता होता।

सूर्यमुखी—मुझे पड़े रहने दीजिए ; किसी दूसरे की भलाई कीजिए। आप मेरी भलाई नहीं कर सकेंगे ; क्योंकि जीने में मेरी भलाई नहीं, मेरे लिए मरना ही अच्छा है। मैं रास्ते में गिर पड़ी थी और मुझे विश्वास था कि मैं अवश्य मरूंगी। आपने मुझे क्यों बचाया ?

ब्रह्मचारी—नहीं जानता तुम्हें क्या दुःख है, पर जितना भी दुःख हो, आत्महत्या महापाप है।

सूर्यमुखी—मैं आत्महत्या की चेष्टा नहीं करती। मेरी मृत्यु स्वयं आ पहुंची थी—इसीसे मुझे आशा हुई थी; किन्तु मरने में भी मुझे सुख नहीं है।—कहते-कहते सूर्यमुखी का गला भर आया और आंखों से आंसुओं की धार बह चली।

ब्रह्मचारी—मैं देख रहा हूं, जितनी बार मरने की चर्चा तुमने की है उतनी बार तुम्हारी आंखों में आंसू भर आए हैं। इतने पर भी तुम कह रही हो कि मैं मरना चाहती हूं। मां ! मुझे अपना पुत्र समझ मन की बात साफ-साफ कहो। तुम्हारा दुःख दूर करने की शक्ति होगी तो मैं अवश्य उससे तुम्हारा उद्धार करूंगा। यह

कहने के लिए ही मैंने हरिमणि को बाहर भेज दिया है। बातचीत से ज्ञात होता है कि तुम बड़े घर की कन्या हो और इस समय तुम्हें बड़ा कष्ट है। मुझे अपना पुत्र समझकर अपनी बात मुझे बताओ।

सूर्यमुखी ने आंखों में आंसू भरकर कहा, “अब तो मैं मर ही रही हूँ, तब लज्जा करके क्या होगा ? मरने में मुझे सुख है, किन्तु यदि स्वामी का मुख देखे बिना मरी तो मुझे मरने में दुःख ही होगा। यदि इस समय उनको एक बार देख पाती तो मरने में सुखी होती।”

सर्वस्वत्यागी ब्रह्मचारी की आंखें भी भर आईं। बोले, “तुम्हारे स्वामी इस समय कहां हैं ? समाचार देने से आ सकें तो मैं उनके पास समाचार भेज सकता हूँ।”

सूर्यमुखी के उदास मुंह पर प्रसन्नता की एक रेखा दिखाई पड़ी। बोली, “यदि वे चाहें तो आ सकते हैं, परन्तु नहीं जानती कि वे चाहेंगे या नहीं। मैंने बड़ा अपराध किया है ; परन्तु वे दयामय हैं, मेरे अपराध को क्षमा भी कर सकते हैं। परन्तु वह स्थान हरिपुर में, यहां से बहुत दूर है। क्या उनके आने के समय तक मैं जीवित रहूंगी ?”

ब्रह्मचारी—जीवित रहोगी।

सूर्यमुखी के आदेशानुसार ब्रह्मचारी ने नगेन्द्र को पत्र लिख दिया और उसे छोड़ने चले गए। सूर्यमुखी ने आंखों में आंसू भरकर भगवान से भिक्षा मांगी कि ‘यदि तुम सत्य हो और मेरी पति-भक्ति सच्ची हो, तो यह पत्र भेजना सफल हो। मैं अपने स्वामी के चरणों के सिवा और कुछ नहीं जानती। यदि उसके कारण कुछ पुण्य हुआ तो उस पुण्य के फलस्वरूप मैं स्वर्ग नहीं मांगती, इतना ही चाहती हूँ कि मरने के समय स्वामी का मुख देखकर मरूँ।’

किन्तु पत्र नगेन्द्र को नहीं मिला। उसके गोविन्दपुर पहुंचने के बहुत पहले नगेन्द्र घर छोड़ चुके थे। घर छोड़ते समय दीवान से कह गए थे कि मैं बीच-बीच में सूचना दूंगा। वहीं मेरे पत्र भेज

देना । पटना से उनका पत्र आया था कि मैं नाव द्वारा काशी जा रहा हूँ । वहाँ पहुँचकर पता लिखूंगा । काशी पहुँचकर उन्होंने दीवान को पता भेजा । दीवान ने दूसरे पत्रों के साथ ब्रह्मचारी का पत्र भी उन्हें भेज दिया । नगेन्द्र ने पत्र पढ़कर ईश्वर से प्रार्थना की, 'जगदीश्वर ! मुहूर्त-भर मुझे बेहोश न होने दो ।' और तुरन्त व्यवस्थापक से रानीगंज की यात्रा पर चलने की व्यवस्था करने को कहा । फिर बेहोश हो गए ।

उसी रात उन्होंने काशी छोड़ दी । वे समझ गए थे कि ब्रह्मचारीजी का पत्र बहुत दिनों बाद उन्हें मिला है । इस समय सूर्यमुखी कहाँ हैं ? इस लोक में या परलोक में ?

दरबानों ने जिस दिन देवेन्द्र को चोर की भांति खदेड़ा था, उस दिन हीरा मन ही मन हंसी थी किन्तु पीछे सोचने लगी, 'उनको इस प्रकार अपमानित करके मैंने अच्छा नहीं किया । ऐसा करके मैंने अपनी ही आशाओं पर पानी फेर दिया ।'

उधर देवेन्द्र ने बदला लेने के लिए कुटिल नीति का अवलम्बन किया । मालती द्वारा हीरा को बुलवाया । दो-तीन दिन बाद हीरा गई तो उस दिन की घटना की कोई चर्चा न की; उलटे मीठी-मीठी बातों से उसका मन मोहने लगे । हीरा मकड़ी के जाल में फँस गई । उसने समझा—देवेन्द्र सचमुच मेरे प्रणयी हैं । आज उसकी चालाकी उसके किसी काम न आई । कवियों ने जिस शक्ति को मृत्युंजय योगियोंकी समाधि को भी विध्वंस कर देनेवाली कहा है उसीके प्रभाव से हीरा की बुद्धि भी नष्ट हो गई ।

देवेन्द्र ने थोड़ी मदिरा पी और तानपूरा लेकर मस्ती में गीत गाने लगे । हीरा सुनते-सुनते अपने को भूल गई । उसका मन चंचल हो गया । उसे देवेन्द्र सबसे सुन्दर और सर्वादरणीय मालूम पड़े । आंखों से आंसू निकलने लगे ।

देवेन्द्र ने तानपूरा रख दुपट्टे से हीरा की आंखें पोंछ दीं ।

हीरा के शरीर में कांटे उठ आए । देवेन्द्र ने प्रेम से मीठी-मीठी बातें आरम्भ कीं । ज्ञानहीन हीरा ने उसे ही स्वर्गीय सुख समझा । वह प्रेमाद्र हो गई । तब जादू को और तीव्र करने के लिए देवेन्द्र मधुर कण्ठ से गाने लगा । फिर हीरा से भी गाने का अनुरोध किया । हीरा भी उनके स्वर में स्वर मिलाकर गाने लगी । हीरा के गान में प्रेम की भिक्षा थी ।

हीरा चित्त-संयम करना जानती थी, आवश्यकता पड़ने पर कर भी सकती थी; किन्तु चित्त-संयम की ओर उसकी प्रवृत्ति नहीं थी, इसलिए पतंग की भांति वह ज्वाला के मुंह में पड़ गई । देवेन्द्र के कपट-जाल में पड़कर उसने उन्हें अपना प्रणयी समझा और आत्मसमर्पण कर दिया । विष-वृक्ष फल गया ।

वर्षा के बाद शरद् भी बीत चली । धान पक गए, सरोवरों में कमलों की संख्या कम होने लगी । सन्ध्या को आकाश-मण्डल कोहरे से ढकने लगा । कार्तिक के ऐसे ही महीने में एक दिन मधुपुर के समीप कुछ दिन चढ़े एक सुन्दर पालकी आई । गांव के बच्चे और स्त्रियां उसके आसपास खड़ी हो गईं । खेतों में धान काटनेवाले मजदूर धान काटना छोड़ कौतूहल से उधर देखने लगे ।

पालकी से नगेन्द्र उतरे । पूछ-पाछकर रामकृष्ण राय कविराज के यहां पहुंचे और उनसे ब्रह्मचारीजी की बात पूछी । कविराज ने उत्तर दिया कि ब्रह्मचारीजी आजकल यहां नहीं हैं । कहां गए हैं यह भी पता नहीं । वे संन्यासियों की भांति सर्वत्र घूमा करते हैं । कब आवेंगे ठीक नहीं । आज भी आ सकते हैं और दस महीने बाद भी । सावन में वे यहां आए थे और भादों में चले गए ।

नगेन्द्र—कृपया बताइए, हरिमणि वैष्णवी का घर कौन है ?

कविराज—वैष्णवी का घर तो रास्ते में ही था, किन्तु कुछ दिन हुए, आग लगने से वह जल गया ।

नगेन्द्र का हृदय बैठ गया । कांपते स्वर में पूछा, “और

वैष्णवी ?”

कविराज—इसका भी कुछ ठीक उत्तर नहीं दिया जा सकता । आग लगने के बाद वे दिखाई नहीं पड़ीं । कुछ लोगों का कहना है कि उन्होंने स्वयं आग लगाई ।

नगेन्द्र ने अर्धविक्षिप्त की भांति टूटे स्वर में पूछा, “उनके यहां कोई स्त्री भी थी ?”

कविराज—सावन में एक रोगिणी स्त्री को ब्रह्मचारीजी रास्ते में बेहोश पड़ी देख उठा लाए थे । उसका नाम कदाचित् सूर्यमुखी था । खांसी का भयानक रोग होने के कारण ब्रह्मचारी-जी की सम्मति से मैं ही उसकी दवा करता था । प्रायः स्वस्थ हो गई थी कि...

घबराकर नगेन्द्र ने पूछा, “तब ! तब क्या हुआ ?”

कविराज—वैष्णवी के घर में आग लगने पर वह उसीमें जल मरी ।

नगेन्द्र कुर्सी से गिर पड़े । सिर में कड़ी चोट लगी । वे मूर्च्छित हो गए । कविराजजी उनका उपचार करने लगे ।

कौन जीने की इच्छा रखता है ? यह संसारविषमय है । सबके आंगन में विष-वृक्ष बीज-रूप में निहित है । कौन किससे प्रेम करना चाहता है ?

सन्ध्या के समय नगेन्द्र मधुपुर से लौटने के लिए पालकी पर सवार हुए । तब मन में बोले, ‘इतने दिनों पर मेरा सर्वस्व गया !’

क्या चला गया ? सुख ? वह तो जिस दिन सूर्यमुखी घर छोड़कर चली आई थी, उसी दिन चला गया था । फिर इस समय क्या गया ? आशा ? जब तक आशा पास रहती है, किसीका कुछ नहीं जाता । आशा के न रहने पर सब चला जाता है ।

नगेन्द्र का सर्वस्व चला गया, इसीलिए वे गोविन्दपुर चले; वहां रहने के लिए नहीं, वरन् गृहस्थाश्रम से सदा के लिए विदा होने चले। घर तथा सम्पत्ति का प्रबन्ध भी करना था; सम्पूर्ण स्थावर सम्पत्ति भांजे सतीश के नाम लिख देने का विचार किया। परन्तु वकील के यहां गए बिना यह काम होने वाला नहीं था। अस्थावर सम्पत्ति कमल के नाम लिखने की सोची। कुछ रुपये, जितने दिन जिएंगे, अपने भरण-पोषण के लिए भी चाहिए। कुन्द को कमल के साथ रखना ठीक किया। सूर्यमुखी जिस चारपाई पर सोती थी, उसीपर एक बार सोकर रोएंगे। सूर्य के गहनों को अपने साथ लिए-लिए फिरेगे और काल आने पर उन्हें देखते-देखते मरेंगे।

नगेन्द्र पालकी में बैठे इसी प्रकार के विचार कर रहे थे। वे सोचते थे कि जिन चीजों के रहने से संसार में मनुष्य सुखी होते हैं, वे सब परमात्मा ने उन्हें बहुत अधिक परिमाण में दी थीं। धन, ऐश्वर्य, मान, बुद्धि, शिक्षा, अशेष प्रणयशालिनी भार्या—सब इन्हें मिली थीं। पर आज इनके समान दुःखी कौन है? आज यदि समस्त धन-सम्पदा, मान, रूप, विद्या-बुद्धि देकर अपनी पालकी के एक कहार से अपनी अवस्था बदलवा सकते तो उन्हें स्वर्ग-सुख प्राप्त होता। सोचने लगे, 'इस देश के सरकारी जेलखाने में कौन ऐसा हत्यारा है जो मुझसे अधिक सुखी नहीं है, मुझसे पवित्र नहीं है? उन हत्यारों ने दूसरों की हत्या की है। मैंने तो सूर्यमुखी की हत्या की है। मैं इन्द्रियदमन कर सकता तो वह विदेश में आकर इस प्रकार क्यों मरती? मैं सबसे पापी हत्यारा हूं। सूर्यमुखी क्या केवल मेरी स्त्री थी? वह मेरा सर्वस्व थी। सम्बन्ध में स्त्री, सौहार्द में भाई, यत्न में बहिन, प्रसन्न रखने में कुटुम्बिनी, स्नेह में मां, भक्ति में कन्या, प्रमोद में मित्र, परामर्श में शिक्षक और परिचर्या में दासी थी। मेरी सूर्यमुखी के समान और किसकी स्त्री थी? संसार में सहायता पहुंचानेवाली, गृह में लक्ष्मी, हृदय में धर्म और कण्ठ की माला थी। वह मेरी आंखों की पुतली, हृदय का रुधिर, शरीर का प्राण और प्राण का सर्वस्व थी। आनन्द में आनन्द,

शोक में शान्ति, चिन्ता में बुद्धि और कार्य में उत्साह थी।' हठात् उन्हें स्मरण हो आया कि मैं पालकी पर सवार जा रहा हूँ और सूर्य पैदल चलकर रोगिणी हुई थी। वे तुरन्त उतरकर पैदल चलने लगे।

नगेन्द्र ने अन्त में स्थिर किया कि 'इस जीवन को सूर्यमुखी की हत्या के प्रायश्चित्त में व्यतीत करूंगा। उसने घर छोड़कर जिन सुख-सुविधाओं का त्याग किया था, मैं भी उनका त्याग करूंगा; उसने जिन दुःखों को भोगा, मैं भी उन्हें भोगूंगा। पांव-पैदल चलगा, रुखा-सूखा भोजन करूंगा, पेड़ के नीचे या पर्णकुटी में शयन करूंगा। जहां अनाथ स्त्रियों को देखूंगा, दिल खोल उनकी सहायता करूंगा। प्रायश्चित्त? पाप का ही प्रायश्चित्त होता है। दुःख का तो प्रायश्चित्त नहीं है। दुःख का प्रायश्चित्त है केवल मृत्यु। मरने से ही दुःख दूर होता है।' नगेन्द्र ने आखें मूंद जगदीश्वर से मृत्यु के लिए प्रार्थना की।

थोड़ी रात बीत चुकी है। श्रीश अकेले अपने बैठकखाने में बैठे हैं। इसी समय नगेन्द्र वहां आ गए। आते ही उन्होंने हाथ का बैग दूर फेंक दिया और एक कुर्सी पर बैठ गए। अकस्मात् उनका आगमन, भावभंगी और मुख की मलिनता देखकर श्रीश डर गए। उनसे क्या पूछना चाहिए, यह कुछ ठीक न कर सके। श्रीश को मालूम था कि ब्रह्मचारी का पत्र पाकर नगेन्द्र काशी से मधुपुर गए हैं। काशी से रवाना होते समय उन्हें नगेन्द्र ने ये बातें लिख भेजी थीं। इस समय नगेन्द्र को उदास तथा मौन देख श्रीश उनके पास जा बैठे और उनका हाथ अपने हाथ में लेकर पूछा, "यह क्या? क्या मधुपुर नहीं गए?"

नगेन्द्र ने क्षीण स्वर में कहा, "गया था।"

श्रीश ने डरकर पूछा, "तब क्या ब्रह्मचारी से भेंट नहीं हुई?"
नगेन्द्र—नहीं।

श्रीश—सूर्य कहां है ?

नगेन्द्र ने आकाश की ओर उंगली से संकेत कर कहा, “स्वर्ग में ।”

श्रीश कुछ नहीं बोले । नगेन्द्र थोड़ी देर तक सिर नीचा किए बैठे रहे । फिर बोले, “तुम स्वर्ग नहीं मानते, पर मैं मानता हूं ।”

श्रीश जानते थे कि नगेन्द्र स्वर्ग नहीं मानते थे । समझ गए कि यह स्वर्ग प्रेम-वासना से उत्पन्न हुआ है । ‘सूर्य कहीं नहीं है’ सोचने की अपेक्षा ‘वह स्वर्ग में है’ यह विचार उत्पन्न होने से हृदय को कुछ सुख मिलता है ।

दोनों चुप बैठे रहे । श्रीश बुद्धिमान थे । जानते थे कि ऐसे समय शिक्षा की बातें विष-तुल्य लगती हैं । कुछ देर बाद वे नगेन्द्र के सोने का प्रबन्ध करने चले गए । भोजन के बारे में कुछ पूछने का साहस ही नहीं हुआ । सोचा, इसका निबटारा कमल कर लेगी । पर कमल ने जब सुना कि सूर्य इस लोक में नहीं है, तो सारा काम-काज एवं सतीश को अकेला छोड़ एकान्त में जाकर रोने लगी ।

विंश हो श्रीश स्वयं ही कुछ मिठाई नगेन्द्र के लिए ले आए । नगेन्द्र ने देखकर कहा, “इसकी कोई जरूरत नहीं; किन्तु तुम बैठो, तुमसे अनेक जरूरी बातें करनी हैं । इसीलिए मैं तुम्हारे पास आया हूं ।”

इसके बाद नगेन्द्र ने कविराजजी से जो कुछ सुना था उनको कह सुनाया और अपना भविष्य का कार्यक्रम भी बता दिया ।

श्रीश ने कहा, “यह बड़े आश्चर्य की बात है कि ब्रह्मचारीजी के साथ रास्ते में तुम्हारी भेंट नहीं हुई । अभी कल ही वे कलकत्ता से तुम्हारी खोज में मधुपुर गए हैं ।”

नगेन्द्र—यह क्या कहते हो ? तुम्हें ब्रह्मचारी का समाचार कैसे मिला ?

श्रीश—वे बड़े महत् हृदय के व्यक्ति हैं । जब उनको तुम्हारी ओर से कोई उत्तर नहीं मिला, तो वे तुम्हारी खोज में स्वयं गोविन्द-पुर गए । वहां भी तुमसे भेंट नहीं हुई । सुना कि काशी के पते पर

दीवान ने पत्र भेजा है, वहां तुमसे भेंट होगी, अतः पहले जगन्नाथ-जी का दर्शन करने गए। वहां से फिर तुम्हारी खोज में गोविन्दपुर गए, पर तुम्हारा कुछ पता न मिला। सुना, कलकत्ता में मेरे यहां पता लगेगा। परसों यहां आए थे, उस समय मैंने तुम्हारा पत्र उन्हें दिखा दिया था। अब वे तुमसे मिलने कल मधुपुर गए हैं; कल रात रानीगंज में तुमसे भेंट होनी चाहिए थी।

नगेन्द्र—मैं कल रानीगंज में नहीं था। सूर्य के सम्बन्ध में तुमसे कुछ बात नहीं हुई ?

श्रीश—यह सब कल कहूंगा।

नगेन्द्र—तुम समझते होगे कि उन बातों को सुनने से मुझे दुःख होगा, परन्तु अब इससे ज्यादा क्या बड़ेगा ? तुम बेखटके कहो।

श्रीश ने ब्रह्मचारीजी के मुंह से सुनी सब बातें कह दीं। हां, बीच-बीच में सूर्य के मानसिक कष्ट की जो बातें उन्होंने सुनाई थीं, उन्हें छिपा लिया।

उन बातों को सुनकर नगेन्द्र उन्मत्त की भांति घर से निकल पड़े। श्रीश उनके साथ चले, परन्तु नगेन्द्र ने विरक्त होकर साथ आने का निषेध कर दिया। रास्ते में आधी रात तक नगेन्द्र पागलों जैसे भटकते रहे। सोचा—जनस्रोत में जाकर अपने को भूल जाऊंगा, किन्तु एक तो इस समय तक भीड़ छट गई थी, दूसरे कोई अपने को कैसे भूल सकता है ? विवश वे श्रीश के पास लौट आए और बोले, “तुमसे कुछ और पूछना चाहता हूं। वह कहां गई थी, क्या-क्या किया था, ये बातें ब्रह्मचारीजी ने सूर्य से अवश्य सुनी होंगी। तुमसे क्या उन्होंने इस विषय में कुछ नहीं कहा ?”

श्रीश—आज थके हो, कल सब सुनना।

नगेन्द्र ने त्योंरी बदलकर तीखे स्वर में कहा, “कहो !” श्रीश ने आंखें उठाकर देखा कि नगेन्द्र उन्मत्त हो गए हैं; मुख काला पड़ गया है। डरकर कहा, “कहता हूं।” नगेन्द्र का मुंह प्रसन्न हो गया। श्रीश ने कहा, “गोविन्दपुर छोड़ने के बाद पैदल वे इधर ही आई थीं।”

नगेन्द्र—रोज कितना चलती थीं ?

श्रीश—यही कोस डेढ़ कोस और क्या !

नगेन्द्र—घर से वे कुछ ले नहीं गई थीं ; उनका भोजन कैसे चलता था ?

श्रीश—कभी उपवास करती थीं, कभी भिक्षा मांगती थीं ; पर इन बातों को पूछकर क्या करोगे ? तुम पागल हो ।

इतना कहकर श्रीश ने नगेन्द्र को खूब डांट-फटकार बताई, क्योंकि उन्होंने देखा कि वे अपने हाथ से अपना गला दबा रहे हैं। पूछा, “क्या इस तरह मरने से तुम्हें सूर्य मिल जाएगी ?”

नगेन्द्र ने उन्मत्त की भांति कहा, “अच्छा कहो ।”

श्रीश—जब तक स्थिर होकर न सुनोगे, कुछ न कहूंगा ।

नगेन्द्र को कुछ न मुनाई पड़ा । वे चेतनावस्था में नहीं थे । बेहोश होकर उन्होंने स्वप्न में देखा कि सूर्य स्वर्ग में रत्न-सिंहासन पर रानी के समान बैठी है । शीतल, मंद, सुगंधित वायु बह रही है ; चिड़ियां कलगान कर रही हैं । सूर्य के पैरों के नीचे सैकड़ों लाल कमल खिले हुए हैं । मैं एक अंधेरे कोने में पड़ा हूँ ; सर्वाङ्ग में पीड़ा है, यमदूत पैंने बेंतों से मार रहे हैं, सूर्य उन्हें मना कर रही है ।

बहुत यत्न करने पर नगेन्द्र होश में आए, पर होश में आते ही चिल्ला उठे, “प्राणाधिके ! तुम कहां हो ?” श्रीश डरकर चुपचाप बैठे रहे । क्रमशः प्रकृतिस्थ होकर नगेन्द्र ने कहा, “कहो ।”

श्रीश ने डरकर पूछा, “अब क्या कहूं ?”

नगेन्द्र बोले, “कहो, नहीं तो अभी प्राण-त्याग करता हूँ ।”

डरकर श्रीश ने फिर कहना आरम्भ किया, “एक धनाढ्य ब्राह्मण काशी जाने के लिए नाव पर कलकत्ता आ रहे थे । एक दिन आहारादि का प्रबन्ध करने के लिए नाव टहराकर उन्होंने एक वृक्ष के नीचे आग जलवाई । संयोग से सूर्य उसी वृक्ष के नीचे एक ओर थककर सो गई थी । ब्राह्मणी के साथ उनकी बातचीत हुई । ब्राह्मण-पत्नी ने उनकी सच्चरित्रता से प्रसन्न हो अपनी नाव में चढ़ा लिया । सूर्य की इच्छा भी काशी जाने की थी । ब्राह्मण के साथ वे कलकत्ता तक नाव पर, वहां से रानीगंज तक रेल पर और रानीगंज के आगे

बैलगाड़ी पर गई थी ।

नगेन्द्र—फिर क्या ब्राह्मण ने सूर्य को छोड़ दिया ?

श्रीश बाबू—नहीं, वे स्वयं ही उन लोगों को छोड़कर चली गईं । तुम्हें देखे बिना वे अधिक दिन बिता नहीं सकती थीं, इसी-लिए उनका साथ छोड़ पैदल लौटीं ।

इतना कहते-कहते श्रीश की आंखों से आंसुओं की धारा बह चली । श्रीश की आंखों से आंसू बहते देख नगेन्द्र उनके गले में हाथ डाल कंधे पर सिर रखकर रोने लगे । फूट-फूटकर बहुत देर तक रोते रहे ; इससे यंत्रणा में कुछ कमी हुई । जिस शोक में मनुष्य रो भी नहीं सकता वह सांघातिक है ।

नगेन्द्र के कुछ शांत होने पर श्रीश ने कहा, “इन बातों को सुनने की अब कोई जरूरत नहीं ।”

नगेन्द्र—अब और सुनना ही क्या है ? इसके बाद की घटना तो इन पापिनी आंखों से देख ही रहा हूं । ब्राह्मण का साथ छोड़ वे मधुपुर आई थीं । मार्ग-श्रम, अनाहार, भीषण वर्षा, आश्रयहीनता और दारुण मानसिक वेदना के एकत्र आक्रमण से रोगग्रस्त हो मरने के लिए रास्ते में पड़ी थी ।

श्रीश क्या कहते ? कुछ देर बाद बोले, “भाई ! उन बातों की चिंता करने से अब लाभ ही क्या है ? इसमें तुम्हारा दोष नहीं है, क्योंकि तुमने सब कुछ उनकी ही राय से किया था ।”

नगेन्द्र की समझ में कुछ न आया । वे जानते थे कि सारा दोष उनका ही है । उन्होंने विप-वृक्ष के बीज को अपने हृदय से क्यों नहीं निकाल फेंका ?

हीरा ने अपनी अमूल्य निधि कौड़ियों के मोल बेच दी । नित्य परिश्रम करने पर बड़े कष्ट से धर्म की रक्षा होती है, किन्तु एक ही दिन के असंयम से वह नष्ट हो जाता है । हीरा के सम्बन्ध में भी यही बात हुई । जिस चीज के लोभ से उसने अपना धर्म बेच

दिया, उसका दाम कानी कौड़ी के बराबर था। देवेन्द्र का प्रेम बाढ़ के जल के समान था—वह जैसा गंदला था, वैसा ही क्षण-स्थायी भी था। दो-चार दिन बाद बाढ़ का वह जल हट गया और हीरा को कीचड़ में छोड़ गया। हीरा चिंता में घुलने लगी। उसने देवेन्द्र के चरणों में गिरकर क्षमा मांगते हुए कहा, “दासी को मत त्यागो।” देवेन्द्र ने कहा, “मैंने आज तक तुम्हारा जो कुछ आदर-सत्कार किया, वह कुन्द को ही पाने के लिए। यदि कुन्द से मिला दो तो तुमसे मेरी बातचीत होती रहेगी, अन्यथा यही अन्तिम भेंट है। तुमने अभिमान के मद में मेरे साथ जैसा व्यवहार किया था, उसका वैसा ही बदला मैं दे रहा हूँ। अपने माथे पर कलंक का टीका लेकर घर जाओ।”

सुनते ही हीरा क्रोध से जल उठी और गाली-गलौज करके देवेन्द्र को फटकारने लगी। देवेन्द्र क्रोध रोक न सके। उन्होंने लात मार उसे निकाल बाहर किया। हीरा पापिष्ठा थी, देवेन्द्र पापिष्ठ और पशु दोनों थे; फिर दोनों के प्रेम का और क्या अंत हो सकता था?

गोविन्दपुर में एक चाण्डाल नीच जातियों की चिकित्सा किया करता था। वह नाना प्रकार के तीक्ष्ण विष रखता था। हीरा घर न जाकर सीधे उसीके पास गई। पचास रुपये देकर उससे तीक्ष्ण विष की एक पुड़िया ली। घर जाकर देर तक रोती रही। फिर सोचा, ‘आत्महत्या क्यों करूं? देवेन्द्र ने मेरा तिरस्कार किया है, अतः यह विष जैसे भी होगा उन्हें ही दूंगा या उनकी प्रियसी कुन्द को।’

अब भी गोविन्दपुर में छःमंजिली बृहत् अट्टालिका मौजूद है, पर नगेन्द्र और सूर्य के न होने से सभी अंधेरा है। घर में कुन्द रहती है, पर चन्द्रहीन रोहिणी से कहीं अंधकार नष्ट हुआ है? मकड़ियों के जालों, चिड़ियों के घोंसलों और धूल से सारा घर

चौपट हो रहा है। उद्यान में सूखकर गिरी पत्तियों का ढेर लगा है। भण्डार में चूहों का राज्य है। हंस-मयूर इत्यादि नष्ट हो गए। गायों के हड्डियाँ निकल आई हैं। घोड़े रोगी हो रहे हैं। किवाड़ों के शीशे टूट गए हैं। चारों ओर कूड़ों का ढेर है। लक्ष्मी नहीं हैं ; बैकुण्ठ श्रीहीन है।

उपेक्षित उद्यान में जैसे घास के ढेर में कहीं-कहीं एकाध फूल दिखाई पड़ जाते हैं, वैसे ही इस घर में कुन्द थी। नौकर-चाकर जैसा खाते-पहनते, कुन्द भी वैसा खा-पहनकर गुज़र करती है। 'स्वामिनी' संबोधन सुनकर वह समझती कि लोग मेरी हंसी उड़ा रहे हैं। दीवानजी किसी बात के संबंध में राय लेने किसी दासी को भेजते तो दीवानजी का नाम सुनते ही वह भय और लज्जा से संकुचित हो जाती। नगेन्द्र कभी कुन्द को पत्र न लिखते थे। दीवानजी के पास उनके जो पत्र आते, अनाथिनी उन्हें ही मांगकर पढ़ लिया करती, पर पढ़कर उन्हें लौटाती न थी। उन पत्रों को पढ़ना ही उसकी संध्या-गायत्री थी। इसीलिए जब दीवानजी का नाम सुनती तो डर जाती कि कहीं वे पत्र मांगने ही न आए हों। दीवानजी को इस बात का पता लग गया था, इसलिए वे उन्हें मांगते नहीं थे, पहले से ही उनकी नकल करवाकर रख लेते थे।

पति से अलग होकर सूर्य ने घोर यंत्रणा पाई थी ; क्या कुन्द को वह यंत्रणा नहीं है ? सूर्य स्वामी को प्यार करती थी ; क्या कुन्द नहीं प्यार करती ? इस छोटे-से हृदय में तो अपरिमित प्रेम भरा है। विवाह के बहुत दिन पहले, छोटी अवस्था से ही उसने नगेन्द्र को प्यार किया था। यह बात उसने किसीसे कही नहीं—कोई जानता भी नहीं था। नगेन्द्र को पाने की उसने कभी इच्छा नहीं की थी—आशा भी नहीं की थी। निराश हृदय की वेदना, बिना किसीसे कुछ कहे-सुने चुपचाप सहन करती थी। नगेन्द्र ने स्वयं ही उसे अपनाया था। आकाश का चांद उसके हाथ में आ गया था। पर अब वह सब कहाँ है ? किस दोष से उसे नगेन्द्र ने ठुकरा दिया, बेचारी यही सोचकर रोया करती है।

नगेन्द्र न प्यार करें। कुन्द का ऐसा भाग्य कहाँ ? पर क्या

एक बार देखना भी नहीं चाहते ? सभी समझे बैठे हैं कि कुन्द सारे अनर्थ की जड़ है। अभागिनी सोचती है, 'मैंने क्या किया ?' फिर सोचती है, 'सूर्य की इस दुर्दशा का कारण मैं ही तो हूँ। उसने मुझे बचाया, बहिन की तरह व्यवहार किया। ऐसी दयामयी बहिन को मैंने रास्ते की भिखारिणी बना दिया। मुझसे अधिक पापिन कौन होगी ? मैं ही क्यों नहीं मर जाती ?' मन कहता, 'अभी न मर सकूंगी। वे आवें, उन्हें एक बार देख लूँ, तब। क्या अब वे न आएंगे ?'

सूर्य का हाल उसे मालूम न था, इसलिए मन में कहती, 'इस समय मरकर क्या होगा ? सूर्य के लौटने पर मरूंगी। उसके सौभाग्य-सुख का कांटा बनना ठीक नहीं।'

दानपत्र लिखे जाने के बाद रजिस्ट्री कराने के लिए नगेन्द्र उसे गोविन्दपुर ले आए। मना करने पर भी कलकत्ता से पैदल ही चले। विवश हो श्रीश उनके पीछे नाव से खाना हुए। कमल और सतीश ने भी साथ दिया।

सूर्य के घर छोड़ने के कारण कमल कुन्द पर बड़ी क्रुद्ध थी। किन्तु इस बार जब देखा कि उसका मुख पीला पड़ गया है, तो सारा क्रोध जाता रहा। यही नहीं, उसकी अवस्था पर दुःख भी हुआ। कमल उसे प्रसन्न करने की चेष्टा करने लगी। नगेन्द्र आनेवाले हैं, यह समाचार सुनकर कुन्द प्रसन्न हुई, किन्तु जब सूर्य की मृत्यु का पता लगा तब रोने लगी।

कमल ने समझा-बुझाकर उसे शान्त किया। इसके बाद जाकर श्रीश बाबू से कहा, "सारा घर कूड़ा हो रहा है।" श्रीश बाबू ने बहुत-से मजदूर लगाकर सारा घर अच्छी तरह साफ करवा दिया।

चार दिन बाद संध्या समय नगेन्द्र भी आ पहुँचे। उन्होंने स्थिर चित्त से गांववालों के साथ बात की, सबका दुःख-सुख सुना, पर किसीके सामने सूर्य की बात न चलाई। सभी उनके दुःख से दुःखित

हुए। जो उन्हें धैर्य दिलाने गए थे, वे उनकी अवस्था देखकर स्वयं रोने लगे। नगेन्द्र ने केवल एक व्यक्ति को दुःख दिया—चिरदुःखिनी कुन्द से उन्होंने भेंट नहीं की।

नगेन्द्र की आज्ञा पाकर दासियों ने सूर्य के शयनागार में उनकी शय्या ठीक कर दी। कमल ने जब यह समाचार सुना तब डर गई।

सबके सो जाने पर नगेन्द्र सूर्य के शयनागार में सोने गए—सोने नहीं, रोने गए। शयनागार बहुत बड़ा और मनोहर था। वह नगेन्द्र के सुख-सर्वस्व का संग्रहालय था। बड़े यत्न से बनवाया गया था। फर्श में सफेद और काले रंग के संगमरमर जड़े हुए थे; दीवारों पर अनेक प्रकार की चित्रकारी की गई थी। एक ओर बढ़िया पालिश किया हुआ एक पलंग रखा है जिसमें स्थान-स्थान पर हाथीदांत जड़ा है। और भी मनोरम चित्रकारी है। मखमली गद्दोंवाली कितनी ही बढ़िया कुर्सियां रखी हैं। तरह-तरह के चित्र लगे हैं; बड़ी सुरुचि और कला के साथ कमरा बनवाया और सजाया गया है। देखकर मुग्ध हो जाना पड़ता है।

नगेन्द्र जब कमरे में गए, आधी रात का समय हो गया था। आंधियारी थी। शाम से ही बूंदें पड़ रही थीं। बाद में आंधी-सी चलने लगी; किवाड़ टकराने लगे। नगेन्द्र ने शयनागार में जाकर दरवाजा बंद कर लिया। शय्या के पास एक ओर का दरवाजा खुला ही रहा, क्योंकि उधर से हवा नहीं आ रही थी।

नगेन्द्र ने शयनागार में जाकर ठण्डी सांस ली और एक सोफे पर पड़ रहे। पड़कर कितना रोए, किसीको मालूम नहीं हुआ। इसी सोफे पर सूर्यमुखी के साथ बैठकर उन्होंने बहुत-सी प्रेम-भरी बातें की थीं। नगेन्द्र ने बार-बार अचेतन आसन को चूमा, आलिंगन किया, फिर धीरे-धीरे सूर्य के चित्रों को देखते रहे। फिर देखा—एक जगह सूर्य ने अपने हाथ से लिखा है :

सम्बत् १८१० वै० में
अपने इष्टदेव की स्मृति में

यह मंदिर उनकी दासी सूर्यमुखी द्वारा बना ।

नगेन्द्र ने उसे पढ़ा—एक बार, दो बार, कई बार पढ़ा, फिर भी तृप्ति नहीं हुई । आंखों में आंसू आ जाने से दृष्टि धुंधली हो रही थी । अकस्मात् देखा—दीपक बुझने को है । तब एक उण्डी मांस लेकर शय्या पर चले गए । उसी समय प्रबल वायु के एक भोंके से दीपक बुझने-बुझने को हुआ । खुले दरवाजे की ओर उनकी दृष्टि गई तो उस क्षीण प्रकाश में एक छायामूर्ति दिखाई पड़ी । जो देखा उससे शरीर कांप उठा । वह छायामूर्ति सूर्य की थी । नगेन्द्र ने जैसे ही पहचाना कि वह सूर्य है, वैसे ही शय्या से जमीन पर कूद उसकी ओर दौड़े, पर छाया वहां से अदृश्य हो गई । इसी समय दीपक भी भक् से जलकर बुझ गया । नगेन्द्र चिल्लाकर जमीन पर मूर्च्छित हो गिर पड़े ।

जब नगेन्द्र धीरे-धीरे सचेत होने लगे, तब भी शयनागार में अंधेरा छाया हुआ था । उन्हें स्मरण हुआ कि मैं तो यहां मूर्च्छित होकर गिर पड़ा था, फिर सिर के नीचे यह तकिया कौन रख गया ? छूकर उन्होंने जाना कि यह किसीकी जांघ है । कोमलता के कारण स्त्री की जांघ मालूम हुई । सोचने लगे—कौन-सी स्त्री मूर्च्छा में हमें इस तरह रखेगी ? कुन्द तो नहीं है ? सन्देह दूर करने के विचार से पूछा, “तू कौन है ?” उत्तर में आंसुओं की दो-चार बूंदें नगेन्द्र के मुंह पर गिर पड़ीं । समझ गए कि स्त्री रो रही है । हाथों के सहारे सिर उठा वे जमीन पर बैठ गए ।

आंधी-पानी बंद हो गया था । बादल छंट गए थे । बाहर धीरे-धीरे उजाला फैल रहा था । घर में प्रकाश की थोड़ी-थोड़ी झलक आ रही थी । नगेन्द्र के बैठते ही वह स्त्री द्वार की ओर चली । भाव-भंगी से नगेन्द्र ने इतना जान लिया कि वह कुन्द

नहीं है ; चाल सूर्य से मिलती है। थोड़ी देर तक उसकी ओर देखा, फिर दौड़कर पैरों पर गिर पड़े। बोले, “तुम देवी हो या मानवी ? मैं तुम्हारे पैर पड़ता हूँ, एक बार बताओ अन्यथा मैं नहीं बचूंगा।”

स्त्री के उत्तर पर उनका ध्यान नहीं गया। ज्योंही उसकी बोली सुन पड़ी, उठकर उससे लिपट गए, किन्तु मन और शरीर दोनों से जर्जर एवं मोहाच्छन्न होने के कारण पुनः शिथिल होकर गिर पड़े। मुंह से कोई बात न निकली।

स्त्री ने मस्तक को फिर गोद में रख लिया। नगेन्द्र के होश में आने तक घर में उजाला हो गया था। पास के उद्यान में पक्षी चह-चहा रहे थे। नगेन्द्र ने अनुभव किया कि मैं किसीकी गोद में पड़ा हूँ। आंख मूंदे ही मूंदे पूछा, “कुन्द ! तू कब आई ? आज रात-भर सूर्य का स्वप्न देखता रहा। देखा है कि मैं उसकी गोद में पड़ा हूँ। तू यदि सूर्य होती तो मुझे कितना सुख होता !”

उत्तर मिला, “यदि उस अभागिनी को देखकर तुम्हें सुख होता हो तो मैं उसी रूप में हुई।”

नगेन्द्र चौककर उठ बैठे। आंखें पोंछकर देखा, फिर-फिर देखा ! सिर पकड़कर बैठ गए। फिर सिर उठाकर देखा, तब भी उन्हें विश्वास न हुआ। सिर झुकाकर बोले, “मैं पागल तो नहीं हो गया ? सूर्य जीवित है या मैं उसकी प्रेतात्मा देख रहा हूँ ? मैं पागल हूँ, पागल।” इतना कह ज़मीन पर लोटकर रोने लगे।

स्त्री ने नगेन्द्र के दोनों पैर पकड़ लिए। रोते-रोते बोली, “उठो मेरे जीवन-सर्वस्व ! मेरे प्राणधन ! उठो। धूल में तुम्हारी देह खराब हो जाएगी। उठो, मेरे सभी दुःखों का आज अन्त हो गया। उठो, मैं मरी नहीं—तुम्हारे चरणों की सेवा के लिए आई हूँ।”

अब सारा संदेह दूर हो गया। नगेन्द्र सूर्य की गोद में मुंह छिपाकर चुपचाप आंसू बहाने लगे। कोई वहां नहीं था। बड़ी देर तक रोते रहे।

इस तरह रोने में भी कितना सुख है !

रोने से छुट्टी मिली तब सूर्य ने अपना हाल बताया, “मैं मरी नहीं थी; कविराजजी को मेरे सम्बन्ध में धोखा हुआ। उनकी ओपधियों से जब मुझमें उठने-बैठने की शक्ति आ गई, तो तुम्हें देखने की बड़ी उत्कण्ठा जगी। मेरे बार-बार अनुरोध करने पर ब्रह्म-चारीजी मुझे यहां लाने को तैयार हुए। यहां आने पर पता चला कि तुम घर छोड़कर कहीं चले गए। ब्रह्मचारीजी मुझे पासवाले गांव में एक ब्राह्मण के यहां रखकर तुम्हारी खोज में निकले। कलकत्ता जाकर श्रीश से भेंट की। पता चला, तुम उनका पत्र पाकर मधुपुर गए हो। मधुपुर जाने पर मालूम हुआ कि हम लोग जिस दिन आए, उसी दिन हरिमणि आग लग जाने के कारण घर-समेत जल मरी। लोगों ने उसकी जली देह को देखकर समझा कि रोगिणी ही भाग न सकने के कारण जल मरी होगी। इसीलिए मेरे मरने की खबर गांव में फैल गई। कविराजजी ने वही बात तुमसे कही थी। तुम्हारे घबराकर मधुपुर से लौटने की बात सुनकर ब्रह्मचारीजी फिर तुम्हें खोजने निकले। दो दिन हुए, वे हमारे पास आए। इधर हम लोगों को यह ज्ञात हुआ कि तुम दो-एक दिन में घर आओगे। इसी आशा से मैं परसों उस गांव से यहां तक आई थी; किन्तु छिपे-छिपे पता लगाने पर जब मालूम हुआ कि तुम अभी नहीं आए हो तो लौट गई। कल ब्रह्मचारीजी से पूछकर मैं फिर यहां आई। एक पहर रात बीत चुकी थी। उधर का दरवाजा खुला था। मैं वाटिका के रास्ते भीतर चली आई। किसीने मुझे नहीं देखा। सीढ़ी के नीचे छिप रही। सबके सो जाने पर यहां आई। भांककर देखा कि तुम हाथ पर सिर रखे बैठे हो। उसी समय दौड़कर तुम्हारे चरणों पर गिर पड़ने की इच्छा हुई; किन्तु सोचा, कदाचित् मेरा अपराध क्षमा न करो। दर्शन से ही मुझे तृप्ति हो गई। पर तुम मुझे देखकर मूर्च्छित हो गए। तभी से गोद में लेकर बैठी हूं। मुझे आशा न थी

कि फिर ऐसा सौभाग्य-सुख मेरे भाग्य में लिखा है। परन्तु जान पड़ता है, तुम मुझे प्यार नहीं करते, तभी तो मुझे छूकर भी पहचान न सके। मैं तो तुम्हारा शरीर छूकर जो हवा आती है, उसे भी पहचान जाती हूँ।”

जिस समय आनन्द की चरमसीमा में नगेन्द्र सूर्य के साथ प्रेमल वार्तालाप कर रहे थे, उसी समय दूसरे कमरे में प्राण-घातक घटना होने जा रही थी।

नगेन्द्र ने घर लौटकर सबसे भेंट की, किन्तु कुन्द दर्शन भी न पा सकी। इससे उसके कलेजे पर गहरी चोट लगी। अपने कमरे में जाकर रात-भर रोती रही। इस बार लड़कों की तरह नहीं, वरन् मर्मन्तक पीड़ा से व्यथित होकर रोई। जिसने छोटी अवस्था में ही किसीको अपना सर्वस्व समर्पण कर उसके बदले में अपमान पाया होगा, वही उस रुलाई की गंभीरता अनुभव कर सकता है। कुन्द पश्चात्ताप करने लगी कि स्वामी के दर्शनों की इच्छा से मैंने क्यों इन प्राणों को रखा? फिर सोचा, ‘अब किस सुख की आशा से इन प्राणों को रखूँ?’

रात-भर रोने के बाद सवेरे कुन्द को कुछ भपकी आ गई। कुन्द ने उस भपकी में दूसरी बार अत्यन्त लोमहर्षक स्वप्न देखा। चार वर्ष पूर्व पिता की मृत्यु-शय्या के समीप जो ज्योतिर्मयी मूर्ति उसकी माता का रूप धारण कर स्वप्न में दिखाई पड़ी थी, इस समय वही आलोकमयी प्रशस्त मूर्ति पुनः आई है। किन्तु इस बार वह शुभ्र चन्द्रमण्डल में बैठी हुई नहीं है; एक घने नील बादल पर बैठकर आई है। उनके चारों ओर अंधकारमय काली भाप उठ रही है। उसी अंधकार में एक मानवी मूर्ति मुस्करा रही है। बीच-बीच में बिजली चमकती है। कुन्द यह देख डर गई कि वह मुस्कराती मूर्ति हीरा की है। मां गंभीर हैं। कहती हैं :

“कुन्द ! उस समय तूने मेरी बात न मानी, मेरे साथ नहीं

आई ; अब तेरी क्या इच्छा है ?”

सुनकर कुन्द रोने लगी ।

माता ने फिर कहा, “मैंने तुझसे कहा था कि एक बार तेरे पास और आऊंगी, इसीसे आई हूँ । इस समय यदि संसार के सुख से तेरा मन भर गया हो तो मेरे साथ चल ।”

कुन्द ने रोकर कहा, “मां ! मुझको अपने साथ ले चल । अब यहां क्या है !”

मां ने कहा, “तब आ ।”

इतना कहकर वह मूर्ति गायब हो गई । नींद टूटने पर कुन्द ने स्वप्न का स्मरण कर ईश्वर से प्रार्थना की, ‘इस बार मेरा स्वप्न सफल हो ।’

सबेरे हीरा कुन्द की सेवा के लिए आई तो देखा कि कुन्द रो रही है ।

जब से कमल आई है, हीरा कुन्द के साथ बड़ा शिष्ट व्यवहार करती है । नगेन्द्र का आगमन ही इसका कारण है । पहले से भी प्रियवादिनी हो गई है । दूसरी कोई स्त्री होती तो हीरा के इस कपट-व्यवहार का अर्थ सहज में समझ जाती, परन्तु कुन्द सरल-हृदया और शीघ्र प्रसन्न हो जानेवाली थी । अतः हीरा के इस आकस्मिक परिवर्तन से भी प्रसन्न ही हुई । हीरा ने पूछा, “मालकिन ! रोती क्यों हैं ?”

कुन्द ने इसका कुछ उत्तर न दिया । हीरा ने देखा कि कुन्द की आंखें उठ आई हैं और आंसू से तकिया गीला हो गया है । पूछा, “शैत-भर रोती रहें, क्या बाबू ने कुछ कहा है ?”

कुन्द ने रोते-रोते कहा, “कुछ नहीं ।”

इतना कह बिलख-बिलखकर रोने लगी । हीरा ने पूछा, “बाबू से क्या बात हुई ? मैं आपकी दासी हूँ, मुझसे कहने में संकोच न करें ।”

कुन्द ने कहा, “उन्होंने दर्शन ही नहीं दिए ।” इतना कह फिर से रो पड़ी । हीरा मन में तो प्रसन्न हुई पर ऊपर से बात बनाकर बोली, “छिः ! इसमें रोने की क्या बात है ? संसार है । लोगों

पर बड़े-बड़े दुःख पड़ते हैं। आप केवल भेंट होने में विलम्ब के कारण रो रही हैं !”

इससे बड़ा दुःख और क्या होगा, कुन्द समझ नहीं सकी। हीरा ने कहा, “मेरे जैसा दुःख होता तो आप आत्महत्या कर लेतीं।”

‘आत्महत्या’ शब्द सुनते ही कुन्द कांप उठी। रात में कई बार उसने आत्महत्या की बात सोची थी। अब उसे विश्वास हो गया कि उसकी दारुण वेदना की वही एक ओषधि है।

हीरा ने अपनी कहानी सुनाई, पर देवेन्द्र और कुन्द का नाम गुप्त रखा। बोली, “निराशा के कारण मैंने चाण्डाल से मरने के लिए विष खरीदा, किन्तु फिर सोचा—दूसरों के लिए क्यों अपने प्राण दूं ? इसलिए विष को बक्स में बन्द कर रख दिया है।” इतना कह अपनी कोठरी से एक छोटा बक्स उठा लाई और खोलकर विष की पुड़िया दिखा दी। इसी समय अकस्मात् नगेन्द्र के घर मंगलवाद्य बजने लगे। विस्मित हो हीरा उधर दौड़ गई। अवसर पाकर अभागिनी कुन्द ने थोड़ा-सा विष चुरा लिया।

हीरा ने जाकर देखा कि सूर्यमुखी आसन पर बैठी है। घर-भर की स्त्रियां उसे घेरे हैं। कमल भी है। दासियां सूर्य के रूखे वालों में तेल डालकर संवार रही हैं। और वह सबसे मीठी बातें कर रही है।

हीरा तो यही जानती थी कि सूर्य मर चुकी है। इसलिए देखकर भी उसे हठात् विश्वास नहीं हुआ। एक स्त्री से कान में पूछा, “यह कौन है ?”

उसने कहा, “अन्धी हो गई ? मालकिन को भी नहीं पहचानती ?”

श्रृंगार समाप्त होने पर सूर्य ने कमल से कहा, “चलो, कुन्द से मिल आवें। उसने मेरा कोई अपराध नहीं किया है और उस-

पर मेरा क्रोध भी नहीं है। वह मेरी छोटी बहिन है।”

कमल और सूर्य कुन्द से मिलने गईं। वहां उन्हें देर लगी। अन्त में कमल भयाकुल हो कुन्द के घर से बाहर निकली और बहुत घबराकर नगेन्द्र को बुला भेजा। नगेन्द्र आए। द्वार पर सूर्य से भेट हुई, “क्या हुआ?”

सूर्य ने रोकर कहा, “सर्वनाथ! मेरे भाग्य में सुख नहीं है। कुन्द मेरी छोटी बहिन है, यह सोचकर देखने आई थी; किन्तु उसने विषपान किया है।”

नगेन्द्र—ऐं!

सूर्यमुखी—तुम उसके पास जाओ। मैं डाक्टर बुलवाती हूं।

इतना कह वह चली गई। नगेन्द्र ने अन्दर जाकर देखा—कुन्द का कोमल मुख काला पड़ गया है। आंखों में तेज नहीं है। शरीर सुन्न हो रहा है।

कुन्द शय्या की पाटी पर सिर रखे बैठी थी, नगेन्द्र को देखते ही आंखों से आंसुओं की धारा बह चली। निकट आने पर छिन्न लता की भांति वह नगेन्द्र के चरणों में गिर पड़ी। नगेन्द्र ने प्रेमाद्र् कर्ण कण्ठ से कहा, “कुन्द! यह क्या? मैंने क्या अपराध किया जो इस तरह मुझे छोड़कर चली जा रही हो?”

कुन्द कभी स्वामी की बातों का उत्तर नहीं देती थी। आज अंतिम समय जान उसने कहा, “तुमने किस अपराध से मुझे त्याग दिया था?”

नगेन्द्र क्या उत्तर देते? नीचे सिर करके बैठ गए। कुन्द ने कहा, “कल यदि तुम इसी प्रकार मेरे पास आकर बैठते, एक बार भी मुझे ‘कुन्द’ कहकर पुकारते, तो मैं न मरती। मैंने बहुत थोड़े दिनों के लिए तुम्हें पाया था। तुम्हें देखने से तृप्ति नहीं हुई।”

नगेन्द्र अपनी जांघ पर उसका सिर रख सुनने लगे। कुन्द बोली, “आज तुम्हारी कुन्द बड़ी मुखरा हो गई है। उसे क्षमा कर

देना, क्योंकि फिर उसे तुमसे दो बातें करने का समय नहीं मिलेगा।”

नगेन्द्र को उदास बैठे देख फिर कहने लगी, “छिः ! इस प्रकाश उदास होकर चुपचाप न बैठो। यदि इस समय भी तुम्हारा प्रसन्न मुख देखते-देखते न मर सकी तो मरकर भी मुझे सुख न मिलेगा।

नगेन्द्र ने व्यथित होकर कहा, “तुमने क्यों ऐसा किया कुन्द ! एक बार मुझे बुला लेतीं ?”

कुन्द ने वादल में चमकनेवाली क्षीण बिजली के समान सूखी हंसी हंसकर कहा, “उसे जाने दो। इतना मैंने मन के आवेग में कह दिया है। तुम्हारे आने के पहले ही संकल्प किया था कि बहिन यदि कभी लौटकर आवेंगी तो तुम्हें उन्हें सहेजकर मरुंगी। जिसने मुझे छोटी बहिन के समान पाला, उसके सुख में कांटा बनना उचित नहीं है। मरने के पूर्व एक बार तुम्हें देखने की इच्छा थी, किन्तु जब तुम्हें देखती हूँ तो मरने की इच्छा नहीं होती।”

कुन्द के बोलने की शक्ति धीरे-धीरे नष्ट हो रही थी। अन्त-काल समीप आता जा रहा था।

सांस लेकर बड़ी कंठिनाई से कुन्द बोली, “मैं तुम्हें देवता समझती थी। साहस करके मुंह खोलकर कभी तुमसे बोली नहीं हूँ; इसीलिए मेरी बोलने की साध पूरी नहीं हुई। जो कुछ अपराध हो क्षमा करना। अब देह अवसन्न हो रही है, बोला नहीं जाता।” इतना कह नगेन्द्र की गोद में सिर रख नीरव हो गई।

अंत समय आया जान उसने सूर्य और कमल को देखना चाहा। आने पर कुन्द ने उनके चरणों की धूल अपने माथे पर लगाई। वे दोनों फूट-फूटकर रोने लगीं।

इसके बाद स्वामी के चरणों में मुंह छिपा लिया और थोड़ी देर में प्राणत्याग किया।

सूर्य ने रोते-रोते कहा, “सौभाग्यवती ! तेरे जैसा भाग्य सबका हो।”

कुन्द की मृत्यु के बाद इस बात की बड़ी विवेचना हुई कि उसको विष कहाँ मिला। सबका अनुमान था कि यह हीरा का ही काम है, किन्तु उस दिन से हीरा फिर कभी गोविन्दपुर में देखाई न पड़ी।

इसके दो वर्ष बाद देवेन्द्र की भी मृत्यु हो गई। वे एक अत्यन्त तृणित रोग से ग्रस्त चारपाई पर पड़े थे। उठने-बैठने की भी शक्ति नहीं रह गई थी। उसी समय बड़ा शोर मचा। पूछने पर नौकरों ने बताया, “एक पगली आपसे भेंट करना चाहती है।” आज्ञा हुई, “आने दो।”

आने पर देवेन्द्र ने देखा—दीना-मलिना स्त्री है। चीथड़े लपेटे हैं और बालों में धूल भरी है।

वह स्त्री आकर उनकी ओर देखकर घूरती रही। देवेन्द्र ने समझा, पगली ही है। घूरते हुए वह बोली, “पहचाना नहीं? मैं हीरा हूँ।”

देवेन्द्र ने चौंककर पूछा, “ऐं! तुम्हारी यह दशा किसने की?”

हीरा क्रोध से दांत पीसती उन्हें मारने दौड़ी। बोली, “पूछते हो—किसने यह दशा की? तुमने, तुमने! इस समय पहचानते नहीं, किन्तु किसी समय घण्टों चापलूसी किया करते थे। इन्हीं पैरों पर सिर रखकर एक दिन तुमने गाते हुए भीख मांगी थी :

‘स्मर गरलखण्डनम्, मम शिरसि मंडनम्, देहि पदपल्लवमुदारम्।’

“पर जाने दो ; उन बातों को कहने से क्या होगा? जिस दिन तुमने लात मारकर मुझे निकाल दिया, उसी दिन आत्महत्या के विचारों से विष लाई। फिर सोचा—मैं क्यों मरूँ, तुम्हें या तुम्हारी प्रियतमा को ही विष देना ठीक है, जिसके कारण तुमने मेरा तिरस्कार किया था। चतुराई से विष कुन्द के पास पहुँचा दिया। परन्तु उसकी मृत्यु के बाद मेरे कलेजे पर ऐसा धक्का लगा कि पागल हो गई। गाँव छोड़ दिया। जब अच्छी रहती, रास्ते में भीख मांगती और जब पागलपन ज्यादा बढ़ जाता, तो किसी पेड़ के नीचे पड़ रहती। कभी-कभी भिक्षा मिल जाती, पर रोज पगली को कौन दे? भोजन न मिलने से ज्वर आदि रोग उमड़ आए। अब योंही इधर-उधर

घूमती हूँ । तुम्हारे मरने का समय आया सुन बड़ा आनन्द हुआ ।
भगवान तुम्हें नरक में भी जगह न दें । ”

इतना कहकर भयंकर अट्टहास किया । देवेन्द्र डरकर एक ओर
सरक गए । हीरा नाचते-नाचते बाहर निकल गई और गाने लगी
“स्मर गरलखण्डनम्, मम शिरसि मंडनम्, देहि पदपल्लवमुदारम् ।

भयवश देवेन्द्र ने और जल्दी प्राणत्याग किया ।

देवेन्द्र की मृत्यु के बाद भी कई दिनों तक आधी रात को पहरे-
दारों ने भयार्त होकर सुना कि कोई गा रहा है :

“स्मर गरलखण्डनम्, मम शिरसि मंडनम्, देहि पदपल्लवमुदारम् ।”

◇ ◇ ◇

